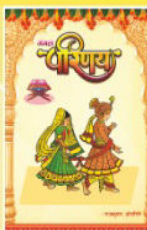
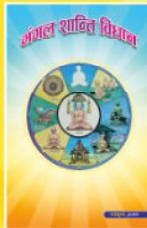


माँ की सीख



- राजकुमार शास्त्री, द्रोणगिरि

लेखक द्वारा लिखित प्रकाशित साहित्य



समस्त चित्रांकन: शाश्वत प्रज्ञा जैन, गुना





माँ की सीख

– राजकुमार,
द्रोणगिरि

यदि हम तनावमुक्त जीवन
जीना चाहते हैं, मुस्कुराते रहकर
दूसरों के मुस्कुराने में कारण बनना
चाहते हैं, अपनी संस्कृति को
जीवन्त रखना चाहते हैं, तो
महिलाओं को सोचना/समझना
होगा और अपने आपको उस
गलाकाट प्रतिस्पर्धा से बाहर रखना
होगा ।

- इसी पुस्तक से

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट का 36 वाँ पुष्प
श्री राम-नन्दनी ग्रन्थमाला का 14वाँ पुष्प

माँ की सौख

(पारिवारिक शिष्टाचार एवं श्रावकाचार के
पालन में महिलाओं का योगदान)

लेखक
राजकुमार शास्त्री

प्रकाशक
समर्पण

18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)
मो. 91 9414103492

प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव

1. श्रीमती नंदनीबाई जैन, द्रोणगिरि	2500/-
2. डॉ. ममता जैन, उदयपुर	2500/-
3. श्रीमती निष्ठा जैन-सुश्री विपाशा जैन, उदयपुर	2500/-
4. डॉ. बाहुबली जैन, इन्दौर	1000/-
5. विद्या-सागर जैन, उदयपुर	1000/-
6. श्रीमती कमला भारिल्ल, जयपुर	500/-

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ (शाश्वतधाम के पंचम वार्षिकोत्सव, दिनांक 2 दिसंबर से 7 दिसंबर 2022 के अवसर पर प्रकाशित)

प्राप्ति स्थान : शाश्वतधाम, उदयपुर (राज.),
मो. 91-9414103492
: श्री दिनेश शास्त्री, जयपुर
मो. 91-9928517346

पुनः प्रकाशन हेतु सहयोग राशि : 30/-

मुद्रक : देशना कम्प्यूटर्स
82, पॉल्ट्री फार्म, आगरा रोड, जयपुर
मो. 9928517346

प्रकाशकीय

अभी तक 'समर्पण' द्वारा प्रकाशित साहित्य पाठकों के बीच भरपूर पसन्द किया गया। एतदर्थ लेखकों/पाठकों/अर्थ सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद।

'समर्पण' के 36वें पुष्प के रूप में पण्डित राजकुमार शास्त्री द्वारा लिखित 'माँ की सीख' प्रस्तुत है। आशा है पाठक इस संस्करण का भी पूर्व की भांति आनन्द लेंगे।

'समर्पण' द्वारा प्रकाशित साहित्य के प्रकाशन सहयोग हेतु पाठकों द्वारा अधिकांश अर्थ सहयोग पहले ही प्राप्त हो जाता है, अतः अधिकतर साहित्य 'जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ' के आधार पर जाता है। अनेक साधर्मी अधिक संख्या में साहित्य लेते हैं तो सहयोग राशि भी प्रदान करते हैं, वह राशि जिन प्रकाशनों में सहयोग कम आता है, उनके प्रकाशन में व्यय हो जाता है।

छह वर्ष की अल्पावधि में 35 पुष्प प्रकाशित होना एवं उनका समाप्त होना हमारे लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन्होंने अर्थ सहयोग प्रदान किया है, उन्हें धन्यवाद। पुस्तक के आकर्षक मुद्रण हेतु श्री दिनेश जैन-देशना कम्प्यूटर्स जयपुर को भी साधुवाद देते हैं, जो कम समय में हमारी इच्छानुसार प्रकाशन में सहयोग प्रदान करते हैं।

आप पुस्तक पढ़कर जो भी आपके भाव हों, वह 9414103492 पर अवश्य ही सूचित करें। धन्यवाद।

निवेदक : 'समर्पण' चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट : एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में, तन-मन-धन सब अर्पण ।

आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण ॥

ट्रस्ट का नाम - समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट	स्थापना तिथि - 20 सितम्बर 2014
--	--------------------------------

ट्रस्ट मण्डल - संरक्षक : 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 3. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 4. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा ।

अध्यक्ष - राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष -** अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष -** रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री -** डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री -** पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी -** पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री भोपाल, इंजी. सुनील जैन छतरपुर, गणतंत्र 'ओजस्वी' आगरा ।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा - उद्देश्य : 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना । 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरूकता पैदा करना । 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना । 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना । 5. शिक्षा व चिकित्सा के क्षेत्र में आवश्यक मार्गदर्शन एवं सहयोग करना ।

गतिविधि - 1. **साहित्य प्रकाशन,** 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **सुखायतन** - सुखार्थी साधर्मियों के लिए निःशुल्क-सशुल्क आवास-भोजन की व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक पर्यावरण प्रदान करना, 4. **साधर्मी वात्सल्य योजना** - साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना । 5. **'प्रयास'** प्रकल्प के माध्यम से जैन समाज के युवा वर्ग को धार्मिक संस्कारों के साथ लौकिक जीवन में उन्नति के विविध क्षेत्रों का परिचय व मार्गदर्शन देना, यथायोग्य-यथासंभव सहयोग करना और इस प्रकल्प को सार्थक करने के लिए यदि आवश्यक हुआ तो केन्द्रों का निर्माण व संचालन करना । 6. **मंगल प्रयास** जयपुर (शास्त्री बालिकाओं के लिए उच्च शिक्षा हेतु)

मनोगत

वर्तमान युग को 'कल-युग' भी कहा जाता है। 'कल' का एक अर्थ मशीन भी होता है। इस कल-युग में मशीनों का इतना अधिक प्रभाव बढ़ता जा रहा है कि हम दिन के 'अथ' से 'इति' तक प्रति क्षण किसी न किसी 'कल' से जुड़े रहते हैं - चाहे किसी से बात करना हो, भोजन सामग्री तैयार करना हो, कहीं आना-जाना हो, दुकान, उद्योग या किसी भी तरह का व्यवसाय हो सर्वत्र मशीनें ही मशीनें दिखाई देती हैं। इस मशीनी युग ने सचेतन मनुष्य को भी मशीन/जड़ बना दिया है अथवा व्यक्ति मशीनों का उपयोग करते-करते स्वयं ही मशीन बनता जा रहा है।

सबकी इतनी व्यस्ताएँ हो गई हैं कि जिनके कारण व्यक्ति पारिवारिक शिष्टाचार व श्रावकाचार से दूर होता जा रहा है। समाज में जब आने-जाने का मौका मिलता है, तब युवा वर्ग की विवशताओं व व्यवस्थाओं को देखने का अवसर प्राप्त होता है, तो मन बहुत दुखी होता है और मेरे छोटे से मस्तिष्क में यह बात आती है कि हम ऊँचा चढ़ने के प्रयासों में कितने नीचे आते जा रहे हैं, बहुत तेज चलकर सब कुछ नजदीक लाने के प्रयासों में अपने और अपनों से दूर होते जा रहे हैं। जिन माताओं-बहनों द्वारा अपने बेटे-बहुओं को संयुक्त परिवार में शान्तिपूर्वक रहने, शुद्ध-सात्विक भोजन करने तथा श्रावकाचार का पालन करने की शिक्षाएँ दी जाती थीं वे भी आज स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छन्द होने, पैसा कमाने और उसके सदुपयोग के नाम पर श्रावकाचार के विरुद्ध आचरण करने में व्यस्त होती जा रही हैं। लोक कहावत के अनुसार 'बाड़ ही खेत को खा रही है अथवा सारे कुएँ में ही भाँग घुल रही है।'

यह सब देखकर 'जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे' के

परम शांति प्रदायक सिद्धान्त का पालन कर ज्ञाता-दृष्टा रहा जा सकता है या फिर समाज/परिवार जिससे अनेक प्रकार की सुविधाएँ, स्नेह प्राप्त कर रहे हैं उसके प्रति अपना कर्तव्य समझकर जो अपनी लघुमति में आ रहा है, उसे अपनी लेखनी लिखकर सभी के बीच प्रेषित किया जा सकता है – इस द्वंद में से मैंने दूसरे विकल्प को चुना।

और इन्हीं भावनाओं के कारण लगभग 2 वर्ष पूर्व व्हाट्सएप पर एक लेखमाला ‘पारिवारिक शिष्टाचार व श्रावकाचार के पालन में महिलाओं का योगदान’ प्रसारित की।

हमारे पुराणों में महिलाओं के चरित्र संबंधी जितनी कथाएँ प्राप्त होती हैं, उतनी पुरुषों की प्राप्त नहीं होती। प्रतिकूलताओं में भी महिलाओं ने समताभाव पूर्वक स्वयं धर्म साधन करते हुए अन्य को भी आदर्श प्रस्तुत किया है।

वर्तमान में भी हम देखते हैं कि परिवार को स्वर्ग या नरक बनाने अथवा तीन-तीन पीढ़ियों तक संस्कार पहुँचाने, दो कुल/परिवारों को संभालने वाली धीर-वीर-गंभीर यदि कोई है तो वह महिला ही है; लेकिन वह भी आधुनिकता की दौड़ में अपने कर्तव्य से ‘हिल’ गई है; इसीलिए उन तक अपनी आवाज/निवेदन पहुँचाने का प्रयास है ‘माँ की सीख।’

भारी भरकम मशीनों की आवाज में मेरी आवाज किन कानों तक पहुँचेगी, कहा नहीं जा सकता। आवाज जहाँ तक पहुँचना हो पहुँचे, मैं अपने कर्तव्य का पालन कर सकूँ – इस भावना से यह लेख माला पुस्तक के रूप में प्रस्तुत है। विनम्र अनुरोध है यदि आपको ये भावनाएँ अच्छी लगें तो अन्य परिवारों तक पहुँचाएँ तथा हमें संदेश देकर हमारा उत्साहवर्धन करें और यदि कुछ सुझाव हों तो भी हमें हम तक प्रेषित करें जिससे अगले संस्करण में परिमार्जन कर सकें। धन्यवाद।

24-11-2022

– राजकुमार, द्रोणगिरि

शिष्टाचार व श्रावकाचार की उपयोगिता

वर्तमान परिवेश में उद्योग/व्यापार/शिक्षा/चिकित्सा इत्यादि क्षेत्रों में आश्चर्यजनक उन्नति हो रही है। सभी शान्ति/सुख पाने के लिए शिक्षा एवं अर्थ के क्षेत्र में 'कैसे और अधिक पाया/कमाया जा सके' इसके लिए दौड़-भाग में इतने मस्त हो रहे हैं कि वास्तव में शान्ति/सुख क्या है? पारिवारिक स्नेह क्या है? धर्म क्या है? इसको भूल ही चुके हैं। इस जीवन का उद्देश्य कैसे भी धनार्जन करना और फिर कैसे भी उस धन का उपयोग करना इतना ही मान लिया है।

इस अंधी दौड़ के चलते परिवार सिमटते जा रहे हैं। परिवार 'हम दो हमारे दो/एक' तक ही सीमित रह गये हैं। दादा-दादी, चाचा-चाची, ताऊ-ताई आदि के रिश्ते अब 'अंकल-आंटी' बनकर रह गये हैं। सरलता-समन्वय-सहयोग-सौजन्य-सहिष्णुता इत्यादि गुण निरन्तर लुप्त होते जा रहे हैं। 'फ्रीडम' पाने और 'लाइफ एन्ज्वाय' करने के नाम पर हम अपनों और अपनी सुन्दर संस्कृति से दूर, बहुत दूर होते जा रहे हैं, पारिवारिक शिष्टाचार व श्रावकाचार गायब होता जा रहा है।

‘वह सफलता किस काम की, जो अपनों में ही परायापन



पैदा कर दे।' इस विचार से प्रेरित होकर हम यह छोटी-सी लेख शृंखला 'पारिवारिक शिष्टाचार एवं श्रावकाचार के पालन में महिलाओं का योगदान' प्रस्तुत कर रहे हैं।

आज के वातावरण में देश/समाज/व्यापार/परिवार के प्रत्येक कार्य में महिलाओं और पुरुषों की समान सहभागिता मानी जा रही है; परन्तु इस तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि महिलाएँ चाहे कितना भी धनार्जन करने लगी हों, कितनी ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली हो, उच्च पदों पर पहुँच गई हों; फिर भी पारिवारिक जिम्मेदारी निभाने, परिवार को सँभालने, परिवार की सेवा करने, परिवार को स्नेह देने में उनकी ही भूमिका मुख्य रहती है और इसीलिए अधिकांश महिलाएँ दोहरे (नौकरी/व्यापार और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ) कार्य करते हुए परेशान भी होती हैं, जिसके कारण शारीरिक/मानसिक रोग व पारिवारिक समस्याएँ व तनाव बढ़ रहा है। पारस्परिक स्नेह व पारिवारिक शिष्टाचार तो घट ही रहा है साथ ही श्रावकाचार का रुझान भी कम होने के कारण प्रमाद व स्वच्छन्द भोग की प्रवृत्ति जैनाचार की अहिंसक संस्कृति का नाश कर रही है।

कुछ महिलाएँ इस सोच वाली भी हो गई हैं कि 'जब मैंने इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त की है, मैं भी कमाती हूँ; तो फिर मैं ही अकेली पारिवारिक दायित्वों में क्यों पिसूँ?' - ऐसी सोच व पति-पत्नी दोनों की ही व्यस्तता होने के कारण भारतीय संस्कृति एवं जैन संस्कृति के अनुसार जो पारिवारिक व्यवस्थाएँ होनी चाहिए, वे चरमरा रही हैं। इसका फल भविष्य की पीढ़ी तो

भोगेगी ही लेकिन जिनके हाथों यह दुष्कृत्य हो रहा है वे भी तनाव युक्त जीवन ही जिएँगे/जी रहे हैं।

यदि हम तनावमुक्त जीवन जीना चाहते हैं, मुस्कुराते रहकर दूसरों के मुस्कुराने में कारण बनना चाहते हैं, अपनी संस्कृति को जीवन्त रखना चाहते हैं, तो महिलाओं को सोचना/समझना होगा और अपने आपको उस गलाकाट प्रतिस्पर्धा से बाहर रखना होगा।

यह जीवन मात्र सुविधाएँ एकत्र करने और कैसे भी उनका उपयोग करते हुए अपने तन-मन-धन को व्यय करने से सार्थक नहीं होगा। यदि हम अपने तन-मन को सुरक्षित रखना चाहते हैं, धन का सदुपयोग करना चाहते हैं, तो हमें अपनी मनःस्थिति बदलनी होगी। मनःस्थिति बदलेगी तो परिस्थिति भी अवश्य ही बदलेगी। यदि मनःस्थिति विकृत है, तो परिस्थितियाँ भी विकृत ही होंगी और उनके पीछे हमें ही नहीं, हमारी अगली पीढ़ियों तक को रोना पड़ेगा; अतः प्रबुद्ध महिलाएँ पारिवारिक शिष्टाचार व श्रावकाचार की उपयोगिता को समझते हुए इसके संवर्धन में योगदान करेंगी यही आशा और विश्वास है।



बच्चे की पहली पाठशाला - माँ

विचारकों ने कहा है -

पितुरप्यधिका माता, गर्भधारणपोषणात्।

अतो हि त्रिषु लोकेषु, नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

‘गर्भधारण और बच्चे के पोषण के कारण से माता-पिता से अधिक दी गई है और इसीलिए तीन लोकों में माता के समान और कोई गुरु नहीं है।’

बच्चे की पहली पाठशाला माँ को माना गया है। इसका अर्थ यही है कि माँ अपने बच्चे को गर्भ-जन्म के बाद से ही जिस तरह की भावनाओं/विचारों/संस्कारों के साथ जोड़ती है, उन संस्कारों का प्रभाव उस बच्चे पर जीवन पर्यंत रहता है।

माँ की भावनाओं का असर बालक पर जन्म के पूर्व भी पड़ता है। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को भेदने की शिक्षा माँ के गर्भ में ही सीख थी। इसलिए माता-बहनों का यह बहुत बड़ा दायित्व है कि जब वे गर्भवती हों, तब से लेकर विशेष रुचि व भावना पूर्वक प्रतिदिन नियमपूर्वक देवदर्शन-पूजन करें, महापुरुषों के चरित्रों को पढ़ें, बारह भावनाएँ भाएँ, मेरी भावना, छहढाला,



भक्तामर स्तोत्र इत्यादि का पाठ करें, शुद्ध सात्विक भोजन करें, जिनवाणी के अभ्यास पूर्वक परिवार में चाहे सास-ससुर आदि

हों या अकेले पति हों उनके साथ सामंजस्य का व्यवहार करते हुए क्रोध आदि कषायों से दूर रहकर तनाव से बचें, सबके सहयोग की भावना रखें, उत्साह/प्रसन्नता पूर्वक कार्य करते हुए समय बिताएँ, विभिन्न रचनात्मक कार्यों में स्वयं को व्यस्त रखें— ये सभी कार्य आपकी संतान को निश्चित ही – ऐसे संस्कार प्रदान करेंगे जो आपके व संतान के लिए जीवन भर सुखद होंगे। आपकी प्रसन्नता, बच्चे के जीवन भर की प्रसन्नता की आधारशिला है।

इससे विपरीत यदि आप गर्भावस्था में अपने कमरे में बैठकर पति से परिवार के झगड़े की बातें करती हैं, सास-ससुर या देवर-देवरानी, जेठ-जेठानी से अलग रहने की बातें सोचती/ करती हैं, केवल पैसा कैसे कमाया जाए? कैसे बचाया जाए? कैसे 'एन्जॉय' किया जाए? इसी विचार में अपना समय लगाती हैं; अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करती हैं, रात्रि भोजन करती हैं, जिनवाणी से दूर रहकर तनाव में ही जीवन जीती हैं तो निश्चित है कि आपकी होने वाली संतान भी तनाव में रहेगी और आपको तनाव देने में ही कारण बनेगी। वह भी आपसे अलग रहकर धन कमाने की मशीन ही बनेगी, अपनी जैन संस्कृति व परिवार से दूर भागेगी।

आप यदि परिवार के बड़े-बुजुर्गों की बुराइयाँ कर रही हैं,

परिवार से दूरी बना रही हैं, परिवार के सदस्यों के साथ छल कर रही हैं; तो ध्यान रखें कि गर्भ में स्थित अथवा नवजात शिशु मात्र देख और सुन ही नहीं रहा है, वह बहुत कुछ सीख भी रहा है। आपके छल पूर्ण व्यवहार को देखकर वह बालक भी छल पूर्वक ही कार्य करना सीख रहा है, आपकी अशिष्टता देखकर वह भी पारिवारिक शिष्टाचार सीखने से वंचित हो रहा है। आप अपने सास-ससुर के प्रति नहीं झुक रहे हैं, तो समझ लीजिये कि आपकी संतान भी आपके सामने झुकने वाली नहीं है। आपको नहीं पता कि आप अनचाहे ही अपने गर्भस्थ शिशु को परिवार से नाता न रखने और आनन्द के नाम पर विषय-भोगमय स्वच्छन्द जीवन जीने, अशिष्ट रहने तथा स्वार्थी बनने की शिक्षा दे रही हैं।

पारिवारिक शिष्टाचार में सबसे पहले यही आवश्यक है कि माताएँ-बहनें प्रयास करके/बुद्धि पूर्वक/जान करके धर्माचरण का पालन करें; विशेषकर गर्भवती होने पर तीर्थकर-चक्रवर्ती, सती सीता, चंदनबाला, अंजना, अनंगसरा, सेठ सुदर्शन, श्रीपाल आदि के चरित्रों को पढ़कर कैसे उन्होंने अनुकूलता-प्रतिकूलता में भी धर्म आराधन किया है - इस बात को समझें। सती अंजना व सती सीता भी गर्भवती थीं जब उनके जीवन में प्रतिकूलताएँ आईं तब भी उन्होंने अपने सास-ससुर या पति को दोष नहीं

दिया, पूर्व में स्वयं द्वारा किए गये दोषों के फलस्वरूप बँधे कर्मों का दोष मानकर शान्त चित्त रहते हुए पंच परमेष्ठी की आराधना की तो हनुमान और लव-कुश जैसी महान संतानें उत्पन्न हुईं। अतः आप बच्चों की श्रेष्ठ पाठशाला बनकर पारिवारिक शिष्टाचार व श्रावकाचार से उनका जीवन सुरभित करने में अमूल्य योगदान देकर माता होना सार्थक करें।



बसना सम्हल-सम्हल के...

बसना सम्हल-सम्हल के, नये घर में बसने वाले।
 चलना सम्हल सम्हल के नये पथ पर चलने वाले॥
 विषयों का विष यहाँ पर, चहुँ ओर ही है फैला।
 है कीच कषायों कषायों तें, हर दिल यहाँ पे मैला॥
 विष कंटकों से बचना, इस जग में रहने वाले॥1॥
 संयम न धर सकें जो, है खेदरूप वर्तन।
 स्थूल पाप त्यागन, इस पथ करे प्रवर्तन॥
 पापों के पथ में प्यारे, चलना सम्हल-सम्हल के॥2॥
 जिनधर्म को न तजना, हो उदय वज्रसम गर।
 नृपवत् मिले विभूति, या ठोकरें ही दर-दर॥
 उदयों से बचके रहना, उदयों में रहने वाले॥3॥
 जब तक भी घर में बसना, सौजन्य सबसे चखना।
 जिनवाणी-पूज्यजन की, आज्ञा को सर पे धरना॥
 शिवपथ तुम्हें मिलेगा, जिनपथ पे चलने वाले॥4॥

घर को नरक नहीं, स्वर्ग बनाएँ

शिष्टाचार अथवा श्रावकाचार के पालन करने व आगे बढ़ाने में स्त्री व पुरुष का समान योगदान है अथवा होना चाहिए; परन्तु यह भी एक सुविदित तथ्य है कि इन संस्कारों के अंकुरण, पल्लवन, पुष्पन और फलन में महिलाओं का निश्चित ही विशेष योगदान होता है; अतः हम यहाँ पर संस्कार देने वाली महिलाओं और संस्कार लेने वाली बालिकाओं की मुख्यता से ही चर्चा कर रहे हैं। कृपया पाठक इसे भेदभाव न समझें; परन्तु यह एक मनोवैज्ञानिक/पारिवारिक/सामाजिक तथ्य है, इसे स्वीकार करके ही हम कुछ कर सकते हैं।

हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। पचास वर्ष पूर्व तक गाँवों/नगरों की जो शैक्षणिक/व्यावसायिक/पारिवारिक परिस्थितियाँ थीं, उनमें आमूल-चूल परिवर्तन हो चुका है। गाँव लगभग खाली हो चुके हैं, परिवार एकल/स्वतन्त्र हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में पचास वर्ष पूर्व का जो व्यवहार था, उसे ज्यों का त्यों लागू किए जाने का आग्रह करना निरी कल्पना ही होगी। फिर भी कुछ विचार किया जाना भी आवश्यक है; क्योंकि यदि हम पूर्णतः स्वच्छन्दता की ओर ही भागते रहेंगे, तो निश्चित ही



नरक समान घर



स्वर्ग समान घर

पारिवारिक शिष्टाचार व श्रावकाचार हमारे जीवन से गायब हो जाएगा, जो कि व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से हम सभी के लिए बहुत हानिकर होगा।

आज परिवार में माता-पिता और उनकी एक या दो संतानें ही रहती हैं, जिसके कारण बच्चों को परिवार में शिष्टाचार देखने का अवसर ही प्राप्त नहीं हो रहा है। अपने दादा-दादी, नाना-नानी, ताऊजी-ताईजी का किस तरह आदर-सम्मान किया जाना चाहिए? किस तरह उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए? - इन प्रायोगिक शिक्षाओं से बच्चे बहुत दूर होते जा रहे हैं।

आज-कल बच्चे दो-ढाई वर्ष की उम्र से ही स्कूल जाने लगे हैं, माता-पिता भी सर्विस में होते हैं और उसके बाद

टेलीविजन/व्हाट्सएप/फेसबुक/ मोबाइल पर अन्य गतिविधियाँ इतनी अधिक बढ़ रही हैं कि माता-पिता बच्चों को और बच्चे माता-पिता को बहुत कम समय दे पा रहे हैं, जिसके कारण भी शिष्टाचार और श्रावकाचार हमारे जीवन से दूर होता जा रहा है।

दसवीं कक्षा के बाद अधिकांश बालक-बालिकाएँ शिक्षा के लिए अपने परिवार से दूर हो जाते हैं। प्रतियोगिता और प्रदर्शन के जमाने में एल.के.जी., यू.के.जी. कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे भी कोचिंग क्लास में घंटों के लिए जाने लगे हैं। स्कूल और कोचिंग क्लासेज का होमवर्क मम्मी-पापा को घर पर कराना पड़ते हैं - ऐसी परिस्थिति में अगर दादा-दादी या ताऊ-ताई, बुआजी-फूफाजी आसपास हों तो भी उनके साथ रहना, उनसे कहानियाँ सुनना, उनके साथ सद् व्यवहार करना, उनका सहयोग करना, इत्यादि बच्चे अपने माता-पिता को भी करते नहीं देख पाते हैं तो वे स्वयं कैसे सीखेंगे ?

बालिकाएँ उच्च शिक्षा के लिए लगभग चौबीस-पच्चीस वर्ष की आयु तक बाहर हॉस्टल में रहती हैं। कभी घर आती हैं तो मेहमान की तरह पारिवारिक जिम्मेदारियों से दूर रहकर समय बिताती हैं। ऐसे में माताओं-बहनों को चाहिए कि अगर आप अपने सास-ससुर या जेठ-जेठानी आदि के साथ नहीं रहती हैं तो वर्ष में कुछ दिन उनके साथ अवश्य बिताने जाएँ या

उन्हें ससम्मान अपने घर बुलायें या सामूहिक यात्रा का कार्यक्रम बनायें, जिससे बच्चे भी अपने पारिवारिक सदस्यों से परस्पर में परिचित हो सकें, उनके प्रति स्नेह जागृत कर सकें व रिश्तों के महत्त्व/आवश्यकता को समझ सकें।

संयुक्त परिवार से दूर एकल परिवारों में रहने की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण कहीं ऐसा न हो कि बच्चों में परस्पर सौहार्द की भावना समूल नष्ट हो जाए। अतः आप उनको संयुक्त परिवार का लाभ बताते हुए समझाएँ कि 'यदि हम जल्दी चलना चाहते हैं तो अकेले चलना चाहिए; परन्तु यदि हम देर तक चलना चाहते हैं तो हमें समूह में ही रहना/चलना चाहिए।'

सुभाषितकार ने भी कहा है -

असहायः पुमानेकः कार्यान्तं नाधिगच्छति ।

तुषेणापि विनिर्मुक्तः तण्डुलो न प्ररोहति ॥

अर्थात् सहायक रहित अकेला व्यक्ति कार्य नहीं कर पाता है, जैसे तुष/छिलके से रहित चावल अंकुरित नहीं होता।

बहुत बुरा लगता है जब बच्चे अपने ताऊ-ताई, चाचा-चाची का नाम लेते हुए नाक-भों सिकोड़ते हैं, दादा-दादी के पास जाने में संकोच करते हैं 'दादा-दादी गंदे रहते हैं, वे साफ-सफाई नहीं करते हैं, वे खाँसते रहते हैं' - ऐसा कहकर उनसे

दूरी बनाए रखते हैं। आश्चर्य तो तब होता है जब पारिवारिक सम्मेलनों में घर के बच्चे-बहुएँ कुटुम्बीजनों को पहचानने में भी असमर्थ होते हैं अथवा उनके नाम तक नहीं जानते या भूल जाते हैं।

बच्चों को जानकारी दें कि बचपन में जब वे स्वयं गंदे रहते थे, मल में पड़े रहते थे, नहाना नहीं आता था, नाक साफ करना नहीं आता था, तब इन्हीं दादा-दादी, ताऊ-ताई ने आपकी गंदगी को भी वात्सल्य पूर्वक साफ किया था, अगर उनके कपड़े गन्दे हैं, उनका कमरा गन्दा है तो यह दादा-दादी की कमी नहीं है बल्कि हमारी ही कमी है कि हम उनके कमरे और कपड़ों की सफाई नहीं कर पा रहे ?

यदि कदाचित् पारिवारिक संपत्ति के बँटवारे आदि के कारण परिवार में कुछ अनबन भी हुई हो, तो भी कृपया बच्चों के सामने अपने बड़े भाई-भाभी या छोटे भाई-बहन की बुराई न करें। पैसे को इतनी अधिक मुख्यता न दें कि आपकी संतान अपने दादा-दादी, ताऊ-ताई या चाचा-चाची के सामने जाकर उनके चरण स्पर्श करने में संकोच करने लग जाए या उनके आने/मिलने पर मुँह फेरने लग जाए। परिवार/समाज में सामंजस्य बनाए रखने के लिए चेतन वस्तुओं की तुलना में अचेतन वस्तुओं को कभी भी अधिक महत्त्व न दें।

पैसा मिलना, नहीं मिलना, बँटवारे के समय योग्य-अयोग्य, पसन्द-नापसन्द के अनुसार अधिकार मिलना, न मिलना - यह सब भाग्याधीन है और सच में कहा जाए तो अपनी-अपनी सोच का ही कमाल है। आप जिस व्यापार-मकान-पैसे के नहीं मिलने पर दुःखी हो रहे हैं, हो सकता है कि अपर पक्ष उसी को पा कर अपने आप को दुःखी अनुभव कर रहा हो; क्योंकि सुख-दुख हमारी अज्ञानता और छोटी सोच का ही परिणाम है। कहा भी जाता है कि हर व्यक्ति को दूसरे की खिचड़ी में घी अधिक नजर आता है; जबकि सच कुछ और ही होता है।

आप अपने बच्चों को विनम्रता, सहयोग, आज्ञा पालन, पारिवारिक सामंजस्य आदि के बारे में समझाएँ, माता-पिता एवं बड़े भाई-बहन द्वारा अपने ऊपर किए गए स्नेह/सहयोग से उनका परिचय कराएँ कि उन्होंने बचपन में किस तरह आपसे लाड़-प्यार किया है और किस तरह उन्होंने आपको आगे पढ़ने और बढ़ने में सहयोग किया है, जिससे बच्चे भी अपने वरिष्ठ जनों का आदर करना, उनकी आज्ञा मानना और समय पड़ने पर उनका सहयोग करना सीख सकें। उन्हें बतायें कि उनके गंदे पैर छूकर भी हमें आशीर्वाद ही मिलेगा, खुशी मिलेगी, उनके पास बैठ कर हमारा चित्त प्रसन्न होगा, उनके अनुभव मिलेंगे, वह उनका बहुत बड़ा उपहार होगा।

केवल भगवान की पूजा करना, लौकिक ज्ञानार्जन करना और पैसा कमाना, अपना चमक-दमकदार मकान बनाना, गाड़ी में बैठना यही हमारी कर्तव्य नहीं है, बल्कि वरिष्ठजनों का सम्मान करना, चरण (घुटने नहीं) स्पर्श करना, बड़े-बूढ़ों का सेवा करना, उनके गुस्से को भी आशीर्वाद के रूप में स्वीकार करने की संस्कृति भारतीय संस्कृति है, जैन संस्कृति है। यह समझाना हमारा कर्तव्य है।

इस अनमोल/सुखद संस्कृति का प्रचार-प्रसार अपने बच्चों/बालिकाओं में माताएँ ही कर सकती हैं। इसीलिए कहा भी जाता है कि 'एक महिला घर को स्वर्ग भी बना सकती है और नरक भी बना सकती है।'

आप अपनी बालिका के सामने जैसा व्यवहार अपने परिजनों के साथ करेंगी, वही व्यवहार आपकी बेटी ससुराल में जाकर करेगी। आपके द्वारा प्रायोगिक रूप में दी गई शिक्षा ही उसके यश/अपयश और शान्ति/अशान्ति का कारण बनेगी।



जो व्यक्ति जैसा है, हम उसे वैसा ही न स्वीकार कर, सबको अपने अनुसार ही ढालना चाहते हैं।

- 'ऐसा क्यों होता है' पुस्तक से साभार

सोकर जल्दी उठना- अच्छी आदत

पहले मन्दिरों में पूजन/स्वाध्याय के कार्यक्रमों में युवा-युवतियों की संख्या बहुत हुआ करती थी, पर आज स्थिति बदल चुकी है। हम कहीं भी देखें, युवा-युवती पूजन/स्वाध्याय में नजर ही नहीं आते। युवा पीढ़ी के धर्म कार्यों से विमुख होने में कहीं न कहीं बड़े-बुजुर्गों में धर्म की भावना के प्रति उत्साह का न होना भी है; क्योंकि अभिभावक अपने बालकों को योग्य संस्कार ही नहीं दे पा रहे हैं।

मन्दिर में किसी भी महिला से यदि उनकी बहू-बेटी के प्रक्षाल/पूजन में न आने के बारे में पूछा जाये तो जवाब होगा कि 'अभी तो महारानी सोकर ही नहीं उठीं।' स्वाध्याय में न आने के बारे में पूछा जाये तो उत्तर होगा 'अभी सोकर उठी होंगी, अब तैयार होकर काम पर जायेंगी या साहब को भेजेंगी। उनके पास मन्दिर/स्वाध्याय के लिए समय ही कहाँ है?'

अधिकांश (सभी नहीं) घरों में यह देखा जा रहा है कि परिवार की युवतियाँ, चाहे बेटी हो या बहू; प्रातःकाल बहुत देर से सोकर उठने लगी हैं, जिससे जैनाचार एवं भारतीय संस्कृति के अनुसार जो कार्य होने चाहिए, वे संपन्न नहीं हो पा रहे हैं।



समय विभाग चक्र

उनके देर से उठने के अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमें एक प्रमुख कारण तो यह है कि आज अध्ययन करने का टाइम-टेबल बदल चुका है। पहले विद्यार्थी प्रातःकाल जल्दी उठकर पढ़ा करते थे; परन्तु अब सर्वत्र ही देर रात तक पढ़ना और सुबह देर तक सोना - यही प्रक्रिया बन चुकी है। जब बालिकाएँ लगभग पच्चीस वर्ष की आयु तक इसी टाइम-टेबल का पालन करती रही हों, तब वही आदत हो जाने से वे चाहे बेटी के रूप में हों या बहू के, नौकरी कर रही हों या घर में ही रह रही हों,

वे जल्दी नहीं उठ पाती हैं।

दूसरा कारण यह है कि - टी.व्ही., व्हाट्सएप, फेसबुक की व्यस्तता एवं शहरों में देर रात तक बाहर घूमने की परम्परा भी बढ़ रही है, जिसके कारण देर रात तक दंपति सोते नहीं हैं; अतः सुबह देर से उठते हैं।

जब बेटियाँ/बहुएँ बहुत देर से सोकर उठती हैं तो प्रातःकाल जो घर के कार्य किए जाने चाहिए, वे कार्य समय पर नहीं हो पाते, जैसे कि सुबह ही घर की सफाई होना, नहा-धोकर ही रसोई घर में जाना, बच्चों के लिए शुद्धता पूर्वक टिफिन तैयार करना, बच्चों को मन्दिर भेजना, स्वयं मन्दिर जाना, पूजन करना, स्वाध्याय में सम्मिलित होना आदि। सुबह की सारी प्रक्रिया ही गड़बड़ हो जाने से हमारी संस्कृति बिगड़ रही है। अनेक परिवार तो बहुओं के देर से उठने की आदत से दुखी होकर टूट रहे हैं या कुछ सास-ससुर इकलौते बेटे-बहू होने से दुखी मन से सहन कर रहे हैं।

जो महिलाएँ देर से सोकर उठती हैं, वे बिना नहाए-धोए ही रसोई घर में पहुँच जाती हैं, जल्दी-जल्दी में बच्चों के लिए टिफिन आदि तैयार करती हैं, बच्चों को मन्दिर जाने के लिए नहीं कह पातीं एवं मन्दिर में जो पूजन-स्वाध्याय का समय होता है, वह भी तब तक निकल जाता है; अतः वे गृहणी होकर भी

इन कार्यों का अर्थात् पूजन और स्वाध्याय का लाभ नहीं ले पातीं। जो स्वयं ही नौकरी कर रही हों वे तो मन्दिर/स्वाध्याय/पूजा से बहुत दूर हो जाती हैं, जिसके कारण वे भावी पीढ़ी को धार्मिक संस्कार देने में बिल्कुल पीछे रह जाती हैं; क्योंकि उनके पास समय ही नहीं रहता है कि वे उनको कुछ सिखा सकें या कुछ करके दिखा सकें।

माताओं-बहनों को यह आवश्यक है कि अपनी बेटियों को-जब वे पढ़ाई छोड़कर (पढ़ाई के समय तो संभव नहीं दिखता) काम करने लगी हों अथवा घर पर ही रह रही हों, तब प्रेम से अथवा जोर जबरदस्ती से भी समझाने का प्रयास करें कि 'बेटी! प्रातःकाल जल्दी उठना, घर की साफ-सफाई में सहयोग करना, नहा-धोकर ही रसोई के काम में सहयोग करना - यह अपने जीवन तथा परिवार की खुशहाली के लिए बहुत आवश्यक है; अतः इसकी आदत डालो।'

यदि आप बेटी को यह सिखाएँगी तो जब वह बहू बनकर ससुराल पहुँचेगी, वहाँ भी इसी प्रकार समय का पालन करेगी, तो निश्चित ही घर में खुशहाली आएगी। चाहे वे अकेले पति-पत्नी रहें या सास-ससुर, जेठ-जेठानी के साथ भरे-पूरे परिवार में रहें; यदि बहू सुबह जल्दी उठकर तैयार होती है, नहा धोकर काम करती है, मन्दिर जाती है, बच्चों को मन्दिर भेजने अथवा

उनके लिए भोजन तैयार करने में सहयोग करती है, तो घर भर में प्रसन्नता होती है।

कम से कम गृहणी बहनों को तो इस परम्परा का पालन करना ही चाहिए। जब उनको सर्विस पर कहीं जाना नहीं है, बाहर का कोई और काम करना नहीं है तो फिर सुबह जल्दी उठकर घर के कार्य नहा-धोकर करने में क्या आपत्ति है?

जब हमारा तन शुद्ध होगा, मन शुद्ध होगा, भोजन शुद्ध होगा तो पूरा जीवन ही शुद्ध हो जायेगा। इससे विपरीत अशुद्धि/प्रमाद से भरा हुआ भोजन भी विकृतियों वाला ही होगा, वह भोजन बच्चों के लिए और स्वयं के लिए भी प्रमाद/विषय पोषक ही होगा। वह जीवन में शान्ति प्रदान करने वाला नहीं होगा।

वर्तमान में महिलाएँ कह सकती हैं कि जब घर के अन्य सदस्य जैसे - पति और बच्चे देर से सोते हैं तो फिर वे भी देर से सो पाती हैं। ऐसे में जल्दी कैसे उठें? इसके लिए -

1. गृहणियों को स्वयं ही अपना समय विभाग चक्र बनाकर समस्या का समाधान खोजना होगा। यदि उन्हें सुबह जल्दी उठने के कारण विश्राम की आवश्यकता है, तो जब बच्चे स्कूल जा चुके हों, श्रीमानजी काम पर जा चुके हों, तब दिन में थोड़ा विश्राम कर लें।

2. बच्चों में जल्दी सोने की आदत डालें, पतिदेव से भी कहें

कि 'यदि हम जल्दी सो कर जल्दी उठेंगे तो सभी काम समय पर हो सकेंगे।' आप प्रेम पूर्वक समय विभाग चक्र को बनाएँगी तो निश्चित ही उसका पालन संभव होगा। लेकिन यदि आप स्वयं रात में ग्यारह-बारह बजे तक सड़कों पर घूमेंगी, टेलीविजन देखेंगी, फेसबुक-व्हाट्सएप पर लगी रहेंगी तो सुबह पाँच-छह बजे उठना आपके बस में ही नहीं रहेगा और फिर दौड़ते-भागते साढ़े सात-आठ बजे उठेंगी, जल्दी-जल्दी टिफिन बनाएँगी, दौड़ते-भागते बच्चे को बस में बैठा देंगी - इस तरह तनाव में आपका दिन/जीवन बीतेगा।

3. जो बहिनें सर्विस में हैं वे भी एक दिन देर से सोती हैं तो दूसरे दिन देर से उठती हैं और फिर यह टाइम-टेबल चल पड़ता है जो कि धीरे-धीरे आदत बन जाता है और वह आदत, हमारी खुशहाल संस्कृति के लिए घातक सिद्ध होती है।

4. मनोवैज्ञानिक और शारीरिक दृष्टिकोण से भी देर से उठने की संस्कृति उचित नहीं है तथा श्रावकाचार की संस्कृति के तो सर्वथा विरुद्ध ही है।

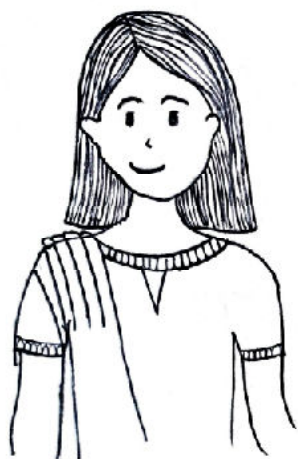
सोचिए! एक ओर हमारी श्रावकाचार की पवित्र संस्कृति, मन की शान्ति, परिवार का स्नेह है और दूसरी ओर प्रमाद, क्षणिक आनन्द, बीमारियाँ और संस्कृति/स्नेह का नाश; आप क्या पसन्द करेंगी?

○○○

आदर दो - आदर लो

वर्तमान में बेटियाँ भी बेटों की भाँति ही अपने परिवार से दूर रह कर उच्च शिक्षा प्राप्त कर, बड़े-बड़े पैकेज लेकर नौकरियाँ कर रही हैं। 'फ्रीडम' व 'इंडिपेंडेंस' की चाहत उनके खान-पान, परिधान की संस्कृति को अन्य की देखा-देखी बदलने के लिए मजबूर कर रही है। ऐसे में 'हम अपने परिवार को सन्तुलित कैसे बनाए रख सकते हैं? कैसे अपने परिवार की बेटी को अपने घर में और उसे बहू बनाकर दूसरे के घर में शिष्ट, मृदु, विनम्र, सरल, सहज बनने में सहयोगी बन सकते हैं।' यह अवश्य ही विचारणीय है।

बहनो ! आप को यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि आप पढ़-लिखकर कितनी भी ऊँची नौकरी कर रही हों, कितना भी पैसा कमा रही हों, कितने भी छोटे या बड़े परिवार में रह रही हों, साड़ी की जगह सूट पहनने लगी हों, घूंगट व सिर से पल्लू चला गया हो, बेटा-बेटी को समान समझा जाने लगा हो; तो भी सभी को इस बात की अपेक्षा रहती ही है कि उनकी बहू समय पर भोजन बनाकर सबको प्रेमपूर्वक खिलाए, उस परिवार में होने वाले वैवाहिक आदि कार्यों में उत्साह पूर्वक सहयोग करें,



बेटी



बहू

घर-परिवार में आने वाले रिश्तेदारों का सम्मान-सहयोग करे, सास-ससुर के साथ विनम्रता पूर्ण व्यवहार करे एवं आवश्यकता पड़ने पर योग्य सेवा-सुश्रुषा भी करें।

उक्त मान्यता में अभी कहीं कोई अन्तर नहीं आया है; इसीलिए प्रायः कामकाजी बहनों को दोहरी मार सहन करनी ही पड़ती है। भले ही समाज में अधिकांश सदस्य खुले विचारों वाले या बहू को बेटी कहने वाले हों; परन्तु बहू को बेटी मानने वाले बहुत कम हैं और मैं तो इस बात का पक्षधर हूँ कि बहू को बेटी माना ही क्यों जाए?

बेटी हमारी जिम्मेदारी है और हम बहू की जिम्मेदारी हैं।

बेटी को योग्य बनाकर विवाह करके हम अपनी जिम्मेदारी पूरी करते हैं, तो बहू को अपने इस घर में आकर परिवार की जिम्मेदारियों को संभाल कर अपना कर्तव्य निर्वहन करना चाहिए।

बेटी तो माता-पिता के घर में मेहमान बन जाती है; जबकि बहू ससुराल में आकर मेजबान/मालकिन बन जाती है - इस अन्तर को हम कैसे मिटा सकते हैं ?

(आवश्यकतानुसार कहीं पर कोई भावनात्मक परिवर्तन आवश्यक हो, तो करना ही चाहिए, लेकिन इस नाम पर हमें स्वच्छन्दता का पोषण नहीं करना चाहिए।)

यह पारिवारिक मनोविज्ञान है कि बहू से कुछ अलग ही अपेक्षाएँ होती ही हैं और यदि वे अपेक्षाएँ पूरी न हों तो खेद-खिन्नता बढ़ती है। खेद-खिन्नता न बढ़े और आपके द्वारा परिवार में सन्तोष-आनन्द, सुख-शान्ति बरसे, इसके लिए -

1. आप माता-पिता, दादा-दादी, सास ससुर, जेठ-जेठानी आदि का योग्य सम्मान करना सीखें/सिखाएँ।

2. समय पर जागृत होकर घर की योग्य साफ-सफाई कर/कराके, नहा-धोकर ही रसोई में प्रवेश करना सिखाएँ।

(पहले महिलाएँ कहा करती थीं कि बिना झाड़ू लगाए और

बिना नहाए रसोई में नहीं जाना चाहिए नहीं तो 'लक्ष्मी नहीं आती अथवा विद्या नहीं आती इत्यादि।' ऐसे कार्य करने को अशिष्टता कहा जाता था, अतः वे कार्य समय पर ही करना चाहिए।)

3. बेटियों को सिखाना चाहिए कि 'बेटी! रसोई अथवा डायनिंग हॉल या जहाँ भी जो खाद्य-सामग्री रखी हो उसे कभी भी उठाकर चखना/खाना बिल्कुल अच्छी आदत नहीं है। योग्य समय व योग्य स्थान में बैठकर ही भोजन करना चाहिए।

4. बेटियों को सिखाइये कि चाहे वे पीहर में हो या ससुराल में इस बात का ध्यान रखें कि पहले अपने से बड़े सदस्यों को भोजन कराएँ, उनके बाद या साथ में भोजन करें। (किसी परिस्थितिवश जैसे आप नौकरी कर रही हैं या किसी काम से बाहर जाना है तो अलग बात है परन्तु घर में रहते हुए यदि आप इस प्रकार का व्यवहार नहीं करेंगी, रिश्तों का ध्यान नहीं रखेंगी तो मजबूरी वश शायद कोई आपसे कुछ न कहे; परन्तु आपकी इस आदत को पसन्द नहीं करेंगे)।

5. बेटी, ससुराल जाने के बाद, ससुराल के रिश्तों को समझे, उनका योग्य आदर करे, उनके साथ योग्य व्यवहार करे। हो सकता है कि वे रिश्तेदार धन-पद आदि में समान न हों, लेकिन रिश्ते, धन-पद के मोहताज नहीं होते, रिश्ते भावनाओं

से बनते हैं अथवा जो पारम्परिक रिश्ते हैं वे खून के रिश्ते, जाति-कुल के रिश्ते कहलाते हैं, उनकी मर्यादाओं को निभाना भी अपनी बेटी को अवश्य सिखाइए।

6. परिवार की वरिष्ठ महिलाओं को ध्यान रखना चाहिए कि आप आने वाली या आ चुकी अपनी बहू से जिस प्रकार की अपेक्षाएँ रखती हैं, अपनी बेटी को उससे कहीं अधिक सिखाने का प्रयास कीजिए, निश्चित ही उसका भविष्य सुखद होगा।

यदि आप अपनी बेटी को पारिवारिक शिष्टाचार सिखायेंगी, तो वही किसी की बहू बनकर निभायेगी भी और अगली पीढ़ी में पहुँचायेगी भी। पारिवारिक शिष्टाचार से हमारा परिवार श्रावकाचार पालन करने के योग्य बनेगा, धर्म प्रकट करने के योग्य बनेगा।

○○○

दुखते दोहे

क्षमा माँगना भूल की, था उत्तम व्यवहार।
 क्षमा माँगते आज हम, है केवल उपचार।।
 करें भूल जो रात-दिन, उनकी तो सुधि नाहिं।
 प्रेमभाव जिस मित्र से, उससे क्षमा कराहिं।
 क्षमा-क्षमा सब कोई कहे, क्षमा न जाने कोई।
 दोषों के प्रक्षाल बिन, क्षमा कहाँ से होई।।
 ज्यों गज कर स्नान को, निज पर डाले धूल।
 त्यों करके क्षमा याचना, करते रहते भूल।।
 क्रोध तजो करदो क्षमा, क्षमा माँग तज मान।
 क्षमा पर्व तब सार्थक, जब हो निज का ज्ञान।।

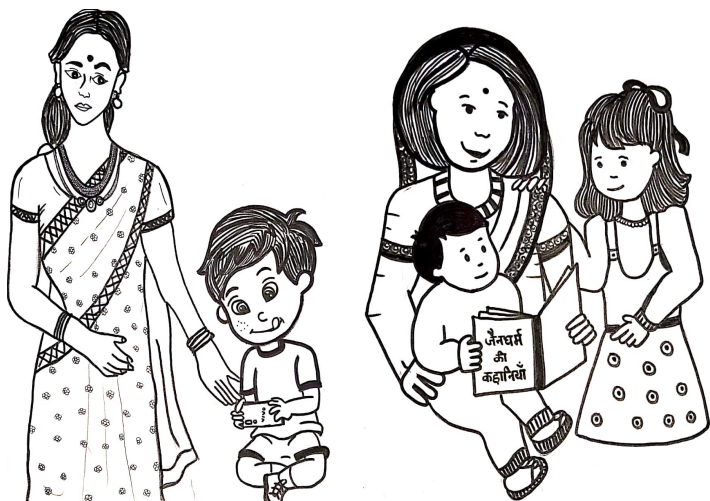
सन्तान को सम्पत्ति नहीं, सन्मति दीजिए

जब बालक पैंतालीस दिन का होता है तब आगम परम्परा के अनुसार उसे जिन मन्दिर ले जाया जाता है, णमोकार मंत्र सुनाया जाता है एवं प्रतिदिन जिनदर्शन करने व अष्ट मूल गुणों के पालन करने के नियम दिलाये जाते हैं। इस तरह वह बालक पैंतालीस दिन की आयु से जैनत्व के संस्कारों के आधार पर जैन मान लिया जाता है।

बालक को जो नियम/ संकल्प दिलाये जाते हैं उन्हें आगम के अनुसार कम से कम आठ वर्ष एवं सामान्यतया समझदार हो जाने तक, पालन कराने का दायित्व माता-पिता का ही होता है।

माता संतान को, चाहे वह समझे या नहीं, बचपन से ही उनको णमोकार मंत्र, चत्तारि मंगल पाठ, देव स्तुति, बारह भावना, आलोचना पाठ, मेरी भावना, आत्म-कीर्तन इत्यादि स्तोत्र/पाठ भक्ति-भाव पूर्वक मधुर ध्वनि में सुनाएँ, जिससे कि इन शब्दों को सुनने के संस्कार पड़ सकें।

मन्दिर बच्चे को प्रतिदिन अनिवार्यरूप से ले जाना चाहिए और पूरी विधि पूर्वक दर्शन कराकर भगवान के प्रति उसका आकर्षण उत्पन्न कराना चाहिए। जब वह समझदार होने लगे तब



उससे स्वयं भी णमोकार मंत्र इत्यादि बुलवाना चाहिए, भगवान को नमस्कार कराना चाहिए, तीन परिक्रमा दिलवाना चाहिए। जब वह पाठशाला जाने लायक हो जाए तब उसे पाठशाला भेजना चाहिए, शिविरों में ले जाना चाहिए। यदि आपके यहाँ पाठशाला नहीं है तो यह माँ का ही दायित्व है कि उसे महापुरुषों की कहानियाँ सुनावे, उसे पंच परमेष्ठी, चौबीस तीर्थंकर, पाँच पाप, चार कषाय, छह द्रव्य, श्रावकाचार इत्यादि विषयों का ज्ञान कराकर जैनत्व के संस्कार दृढ़ करे।

माताएँ छोटे बच्चे को मोबाइल पकड़ा कर उसका मनोरंजन न करें। मोबाइल पकड़ा कर दूसरों के सामने यह प्रदर्शन न करें

कि 'बालक बहुत धार्मिक है। जब हम उसे यह भजन सुनाते हैं या जब यह वीडियो दिखाते हैं तब वह बहुत प्रसन्न होता है। देखो ! इसे भक्तामर स्तोत्र कितना अच्छा लगता है आदि।'

बहिनो ! अभी उस बच्चे की उम्र यह सब सुनकर-समझने की नहीं है, वह बच्चा यह नहीं जानता कि यह भक्तामर स्तोत्र गाया जा रहा है या मेरी भावना गायी जा रही है; उसे तो बाल-सुलभ भावना से बस संगीत और उस वीडियो को देखने का आकर्षण हो रहा है।

मोबाइल पकड़कर वीडियो देखने का आकर्षण उसकी रचनात्मक/कल्पना शक्ति को बचपन से ही कुंठित कर, एक गलत आदत के रूप में विकसित कर देगा जिससे जब वह थोड़ा बड़ा होगा तब वह मोबाइल लेकर वीडियो गेम खेलेगा, मार-धाड़ की पिक्चर देखेगा, गेम डाउनलोड करेगा, मोबाइल नहीं दोगे तो लड़ेगा, रोयेगा, चिड़चिड़ा हो जायेगा; यहाँ तक कि कुछ अवांछित भी कर डालेगा। इसलिए माताओं को बुद्धि पूर्वक अर्थात् जानकर अपनी संतान को मोबाइल के कुसंस्कार से बचाना चाहिए।

आप माता बनी हैं तो अपनी जिम्मेदारी समझिए, एक अच्छी माँ बनने का प्रयास कीजिए। बच्चे के लिए केवल नए-नए कपड़े लाना, नौकरों की गोद में उसको तैयार कराना, डेढ़-

दो साल का होते ही स्कूल भेज देना, उसको मोबाइल पकड़ा देना, अनाप-शनाप संपत्ति उसके नाम पर कमाना – ये सब एक अच्छी माँ बनने के लक्षण नहीं हैं।

आपने बचपन से स्वयं धर्म के संबंध में कुछ न सीखा हो या आपकी माँ किसी कारणवश नहीं सिखा पायी हों, तो एक अच्छी माँ बनने के लिए आप स्वयं जैन धर्म का स्वरूप, पाँच परमेष्ठी, चार मंगल-उत्तम-शरण, जीव-अजीव, छह द्रव्य सात-तत्त्व इत्यादि के बारे में जानने का प्रयास करें। चौबीस तीर्थंकरों व अन्य महापुरुषों की जीवनिओं को सुनाएँ, उससे आप स्वयं भी संस्कारित होंगी और बच्चा भी संस्कारित होगा। ऐसा करने से आप बच्चे की दिनचर्या का स्वयं निकटता से अवलोकन/निरीक्षण कर सकेंगी तथा उसके साथ इस अत्यन्त निकटता का संबंध भी स्थापित कर सकेंगी।

बच्चे को आप सुनाएँगी/सिखाएँगी तो वह आपको गुरु मानेगा और आप मोबाइल से सिखाएँगी तो मोबाइल को ही अपना गुरु मान लेगा। कुछ दिन तो बालक इस मोबाइल को गुरु मानकर धर्म सीखेगा और फिर वह इसी मोबाइल से स्वयं 'मोबाइल' अर्थात् चंचल वृत्ति/व्यक्तित्व/चरित्र वाला बन जाएगा इसलिए आप अपने नौनिहालों को मोबाइल-टेबलेट-लैपटॉप-कंप्यूटर यंत्रों से न जोड़ें, उन्हें अपने हृदय से जोड़ें, अन्यथा जड़/

अचेतन से जुड़कर स्वयं जड़वत् हो जायेंगे। आप स्वयं णमोकार मंत्र सुनाती हैं और मोबाइल णमोकार मंत्र सुनाता है – उन दोनों में बहुत अन्तर है। आप लोरी सुनाती हैं और किसी गीतकार द्वारा गाई हुई लोरी मोबाइल से सुनाती हैं उनमें बहुत अन्तर है। आपके सुनाने में आपकी भावना, आपका वात्सल्य, आपका प्यार भरा स्पर्श भी समाहित है जो मोबाइल से कभी नहीं मिल सकता।

संतान को आप अपनी प्रसन्न मुद्रा से जोड़ें। उस छोटे-से बच्चे को गोद में लेकर मुस्कुराते हुए णमोकार मंत्र/भजन सुनाएँ, उसकी नाक सहलाएँ, उसके गाल सहलाएँ उसे प्रसन्न करें।

बहनो! आप अपने बच्चे को मशीन न बनाएँ, उसका हृदय और मस्तिष्क एक अच्छे मनुष्य का बनाएँ। उसके हृदय और मस्तिष्क में वीतरागी देव, वीतरागता के पोषक शास्त्र और वीतरागी दिगम्बर गुरुओं के प्रति सम्मान हो, महापुरुषों की जीवनियाँ झंकृत हों, अपने परिजनों के प्रति भावनाएँ उत्पन्न हों, इसके लिए आप को स्वयं ही प्रयास करना होगा।

आपके द्वारा दी गई प्रसन्नता, वह बच्चा निश्चित ही आपको लौटाएगा, वह आपके चेहरे पर भी प्रसन्नता लाएगा और यदि आप मशीनों से उसके चेहरे पर प्रसन्नता लाएँगी तो वह भी

वृद्धावस्था में आपके सामने मशीन लाकर रख देगा, जिसे देखकर आपको रोना आयेगा। ऐसा अवसर आपके जीवन में न आए, इसलिए णमोकार मंत्र आदि पाठ सुनायें, भक्ष्य-अभक्ष्य, कर्तव्य-अकर्तव्य की सन्मति दें, उनको बचपन से ही बुद्धि पूर्वक/जानकर प्रतिदिन मन्दिर ले जाएँ।

कदाचित् उसके स्कूल का समय सुबह जल्दी का हो और वह प्रातःकाल मन्दिर न जा सके तो आप भले सायंकाल मन्दिर ले जाएँ, यदि शहरी परिवेश व कार्य की व्यस्तता से प्रतिदिन मन्दिर न जा सकें तो रविवार को ले जायें, पर मन्दिर अवश्य ले जाएँ; परन्तु ऐसा करते हुए - 'अरे! हमने कैसे क्षेत्र/काल/परिस्थिति में जन्म लिया है कि हम योग्य काल में जिन दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। साप्ताहिक दर्शन करना यह राजमार्ग नहीं है। जिस तरह योग्य समय पर भोजन आवश्यक है, उसी तरह योग्य समय पर ही दर्शन-पूजन करना योग्य है' - ऐसा विचार आना चाहिए।

आपका व आपकी संतान का सुखद भविष्य आपके ही हाथों में है। बच्चों को संपत्ति नहीं, सन्मति व संस्कार दीजिए।



जैसा खाओ अन्न, वैसा होवे मन

आपने लोकोक्ति सुनी होगी कि जैसा खाओ अन्न, वैसा होवे मन। हम जो/जैसा भोजन करते हैं, उसका हमारे विचारों पर असर हुए बिना नहीं रहता और जैसे विचार होते हैं, तदनुसार ही आचरण होता है। भोजन और विचारों का ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक संबंध है (कर्ता-कर्म संबंध नहीं है)।

लोक में यह भी कहा और देखा जाता है कि व्यक्ति जिस प्रकार के भावों/व्यवसाय द्वारा पैसा कमाता है, महिलाएँ जिन भावों से भोजन तैयार करतीं व भोजन करातीं हैं तदनुसार ही भोजन करने वाले के विचारों पर भी असर पड़ता है।

आजकल परिवारों में बाजार से नमकीन-पापड़-अचार-मिठाईयाँ लाकर खाना और मेहमानों को खिलाना, बाजार में तैयार आटा-मसाले-मैदा-सूजी और अन्य खाद्य पदार्थों को लाना, होटलों में जाकर रात्रि-भोजन करना, चौराहे पर चाट-पकौड़े या पिज्जा-बर्गर-चाऊमीन आदि खाना, घर में भी जमीकंद का उपयोग व रात्रि-भोजन करना आदि बढ़ता ही जा रहा है। यह सब तामसिक और राजसिक भोजन है जो बाल-किशोर-युवा सभी के मन में तामसिकता (स्वार्थ, ईर्ष्या, गलाकाट प्रतिस्पर्धा,



मात्र स्वच्छता



शुद्धता सहित स्वच्छता

स्वच्छंद भोग की मानसिकता) उत्पन्न करता है। इसीलिए चाहे व्यवसायी हों या नौकरी-पेशा, सर्वत्र चारित्रिक-नैतिक पतन होता जा रहा है, मानव मूल्यों का ह्रास हो रहा है। तनाव-चिन्ता-संघर्ष बढ़ रहा है, सरलता-सहजता के स्थान पर औपचारिकता-छल कपट-विद्वेष बढ़ रहा है, जिसके कारण पारिवारिक झगड़े-हत्या-आत्महत्या- बालात्कार, छोटी-छोटी बातों में टकराहट, विद्यालय- महाविद्यालयों में भी नशेबाजी-छुरेबाजी, गुरुओं का अपमान जैसी घटनाएँ बढ़ रही हैं।

इस परिदृश्य में हमारी बहनों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि बहनें चाहें तो इन विकट परिस्थितियों में जाने से अपने परिवार को रोक सकती हैं। सर्वप्रथम तो श्रीमानजी को और

स्वयं भी वैध साधनों से पैसा कमाने के लिए प्रेरित कर/हो सकती हैं। ध्यान रखें पैसा यदि गलत तरीके से आया हो तो घर का भोजन भी अशुद्ध ही होगा; अतः 'न्याय पूर्वक प्राप्त किया गया धन, विवेकपूर्वक व्यय करना चाहिए।'

बाजार में बनी हुई ब्रेड-पिज्जा-बर्गर इत्यादि अभक्ष्य/अशुद्ध वस्तुएँ बच्चों को खिलाना, बचपन से ही उन्हें होटलों में खाने की आदत डालना और होटलों में खाते हुए सेल्फी लेकर, फोटो फेसबुक पर अपलोड करके अपने आपको 'शिक्षित व समृद्ध' मान कर सन्तुष्ट होना मिथ्या भ्रम है।

हम बच्चों को होटलों/चौपाटियों पर अभक्ष्य पदार्थों का सेवन और रात्रि भोजन कराएँगे तो उसका असर बच्चों के विचारों पर अवश्य ही पड़ेगा। होटलों में जो भी भोजन बनता है वह अमर्यादित सामग्री से रात्रि में बनता है, जिस समय अनेक जीवों की हिंसा होती है। होटलों में खिलाने वालों की दृष्टि केवल और केवल पैसे पर होती है कि किस तरह से ज्यादा ग्राहक आयें/खायें और हम पैसा कमायें। होटल के भोजन में स्वच्छता, स्वाद और सुन्दरता हो सकती है; पर शुद्धता नहीं होती है। हम स्वच्छता को शुद्धता समझ लेते हैं - यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है।

जहाँ गन्दगी न हो, साफ टेबल-कुर्सी, प्लेट-चम्मच का

उपयोग किया जा रहा हो, उसे हम स्वच्छता कह सकते हैं; शुद्धता नहीं। ऐसी स्वच्छता तो मांसाहारी भोजनालय एवं शराब की दुकानों पर भी होती है; पर क्या उसे शुद्धता कहा जा सकता है? कदापि नहीं।

शुद्धता गन्दगी की सफाई कर देना मात्र नहीं है; परन्तु यत्नाचार पूर्वक, दया का पालन करते हुए सफाई करना, वात्सल्य, उत्साह व प्रसन्नता पूर्वक भोजन बनाना, परोसना वह शुद्धता है। शुद्धता में सफाई सम्मिलित है; परन्तु सफाई में शुद्धता शामिल नहीं है।

बाजार में ही नहीं यदि आप घर पर भी अमर्यादित पदार्थों तथा जमीकंद से रात्रि में भोजन तैयार करती हैं और भोजन कराती हैं, तो वह भोजन अशुद्ध ही है। भले ही उस समय स्वच्छ डाइनिंग टेबल पर आप चम्मच से भोजन परोस रही हैं, परिजन चम्मच से खा रहे हैं, नैपकिन लगा रखा है, यह सब स्वच्छता है; शुद्धता नहीं। हमारा श्रावकाचार स्वच्छता के साथ शुद्धता की अपेक्षा भी रखता है।

आपने सुना होगा कि यदि किसी के हृदय में प्रवेश करना है तो उसके मुख के माध्यम से ही किया जा सकता है अर्थात् आप सुस्वादु भोजन किसी को कराएँगे तो आप उसके हृदय में प्रवेश पा ही जाएँगे। इसके लिए आप अपने घर में शुद्ध-सात्त्विक-

आकर्षक भोजन तैयार करें। श्रावकाचार को ध्यान में रखते हुए, आधुनिक पद्धति एवं आधुनिक यंत्रों का उपयोग करते हुए आप बहुत सुन्दर भोजन तैयार कर सकती हैं, नए नामों तथा आकृतियों वाला भोजन भी शुद्धता पूर्वक तैयार किया जा सकता है। उस सुस्वादु भोजन को जब आप प्रसन्नता, उत्साह एवं वात्सल्य पूर्वक अपने परिजनों को कराएँगी तो आप सास-ससुर, देवरानी-जेठानी, बेटा-बहू, बेटी-दामाद के हृदय में एक प्रशंसनीय स्थान बना सकेंगी।

होटल में जाकर आप किसी को कितना भी अच्छा भोजन कराएँ, उससे होटल वालों की प्रशंसा होगी, वहाँ के 'शैफ' (भोजन निर्माता) की प्रशंसा होगी, परोसने वाले 'वेटर' की प्रशंसा होगी उसको ही लोग टिप्स देंगे। उसमें आपका क्या योगदान है? आप उनके हृदय में क्यों बसेंगी? आपने एक बार अच्छे होटल में पार्टी देकर या बच्चों को वहाँ खिलाकर उस होटल को उनके हृदय में बसा दिया। अब आप उन्हें वहाँ न भी ले जाएँ, तो भी वे चोरी छुपे वहाँ जाकर भोजन करेंगे, अपने दोस्तों को भी वहाँ का परिचय देंगे। जबकि आपका बच्चा यदि आपके हाथों के लड्डू-नमकीन-जलेबी-गुलाब जामुन या और जो कुछ भी व्यंजन खाएगा तो वह अपने दोस्तों के बीच में कहेगा 'मेरी माँ इतना अच्छा नमकीन बनाती है, मेरी माँ इतने

अच्छे पराठें बनाती है, मेरी माँ इतनी अच्छी सब्जी, मिठाई बनाती है' – इस तरह आप उसके हृदय में बस जाएँगी। घर के लोग आपकी प्रशंसा करेंगे। आपकी सासूजी मिलने वालों से कहेंगी 'मेरी बहू के हाथ से बना हुआ भोजन आप करेंगे तो उंगलियाँ चाटते रह जाएँगे।'।

क्या आप अपने परिजनों, मित्रों, रिश्तेदारों से अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहतीं ?

क्या आप नहीं चाहतीं कि आपकी सन्तान के हृदय में दया का भाव, सात्विकता का भाव हो ?

क्या आप नहीं चाहतीं कि आपके परिजन स्वस्थ रहें ?

क्या आप नहीं चाहतीं कि इतनी मेहनत से कमाया हुआ पैसा व्यर्थ ही होटलों में जा कर न लुटाया जाए ?

क्या उसी पैसे को आप दान में नहीं दे सकतीं ?

क्या आप उसी पैसे को गरीब बच्चों के लिए वस्त्र आदि देकर प्रसन्न नहीं हो सकतीं ?

यदि हाँ, तो आप स्वयं भी समझें और अपने बच्चों को भी समझाये कि हमें जीने के लिए खाना चाहिए, खाने के लिए नहीं जीना चाहिए अर्थात् स्वाद लोलुप नहीं बनना चाहिए।

यह जीवन केवल इन्द्रियों के विषय-भोगों में लगाने, इन्द्रियों के दास/गुलाम बनने के लिए नहीं मिला है।

यदि आप चाहती हैं कि आपके स्नेहीजन वर्तमान में अस्पतालों में और भविष्य में नरक और तिर्यच गति में न जाएँ, तो श्रावकाचार के अनुसार न्यायपूर्वक कमाए गये धन से, शुद्ध/सात्त्विक भोजन, यत्नाचार पूर्वक बनाया जाये, वात्सल्य व प्रसन्नता पूर्वक खिलाया जाए तथा सन्तोष व अनासक्ति पूर्वक ही खाया जाये, इसके लिए प्रयास कीजिए। यह काम आपके द्वारा ही संभव है।



फरियाद...

मित्रो! हम उसको कैसे कहें शुभ विवाह।
जिसमें असंख्य/अनंत जीवों की निकलती हो आह॥
रात्रि भोजन, जमीकंद, अरु द्विदल का बढ़ रहा प्रयोग।
पटाखे फोड़ने, और सड़कों पर नाचने का लगा है उसको रोग॥
अहिंसा के पुजारी थे कभी ये, जो लगे हैं अब प्रदर्शन में।
पुण्योदय से प्राप्त वित्त को, लगा रहे बस फैशन में॥
पुण्योदय से प्राप्त सम्पदा, लगे पुण्य में तब हो बात।
अहंकार बस करे दिखावा, धन खर्चे निज करता घात॥
हट कर किया और हट कर दिया ही, सब रखते हैं याद।
फेरे, भोजन, अरु बारात, दिन में हो बस इतनी है फरियाद॥

श्रावक बनकर ही गृहस्थपना सार्थक होता है

श्रावक शब्द में तीन अक्षर हैं श्रा+व+क अर्थात् श्रद्धावान+विवेकवान+क्रियावान को ही श्रावक कहा जाता है।

‘विवेक, श्रद्धा और क्रिया दोनों के बीच में है; जिसका अर्थ यह है कि देव-गुरु-धर्म व अपने सुख-दुःख के कारणों की श्रद्धा और धार्मिक तथा लौकिक क्रिया में विवेक होना चाहिए। विवेक रहित श्रद्धान, अंधविश्वास तथा विवेक रहित क्रिया मिथ्याचारित्र अथवा निरर्थक क्रिया कहलाती है।

यह तो एक सुनिश्चित तथ्य है कि प्रत्येक परिवार में समय-समय पर शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक व आर्थिक समस्याएँ आती रहती हैं; समस्याओं से घबराकर व्यक्ति मंत्र-तंत्र, कुदेव-कुगुरु में उलझ जाता है और अंधविश्वासों में फँसकर अपना काम तो सिद्ध नहीं कर पाता; लेकिन मिथ्यात्व को मजबूत करके अपने संसार को लंबा अवश्य कर लेता है। इसलिए महिलाओं को चाहिए कि वे अपने परिवार के सदस्यों को वीतरागी-निर्दोष परमात्मा, वीतरागतामय धर्म और वीतरागता के पथ पर चलने वाले नग्न दिगम्बर साधुओं के प्रति श्रद्धावान करें।



पुत्र-पुत्रियों के जीवन में कभी नौकरी पाने या प्रतियोगी परीक्षाओं में असफल होने या जहाँ काम कर रहे हैं वहाँ मनमुटाव होने, प्रतिकूल स्थान पर नौकरी लगने, योग्य स्थान या योग्य समय पर वैवाहिक संबंध न हो पाने पर अनेक प्रकार की समस्याएँ आती हैं, जिनके कारण वे घर से भागने, डिप्रेशन में आने, यहाँ तक कि आत्महत्या करने के मार्ग पर भी चल पड़ते

हैं अथवा मंत्र-तंत्र, देवी-देवताओं के चक्र में पड़कर अंध-विश्वासों में उलझ जाते हैं।

ऐसी परिस्थिति में बचपन से ही अपनी संतान को संस्कार दीजिए - 'यह मनुष्य भव केवल धन-पद-यश पाने के लिए प्राप्त नहीं हुआ है। यदि हमारा भाग्य/पुण्य का उदय होगा, तो धन-पद सहजता से कहीं भी, कुछ भी प्राप्त हो जायेगा और यदि हमारे भाग्य में नहीं है, तो कोई भी हमें प्राप्त नहीं करा सकता है। 'भाग्य से अधिक व समय से पहले किसी को कुछ नहीं मिलता' इसलिए किसी धन-पद-यश, ट्रांसफर, पुत्र-पुत्री की चाहत में न तो वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु को मानना-पूजना चाहिए और न ही भय और लालच के वश किसी अन्य देवी-देवता को मानना-पूजना चाहिए।'

'एकमात्र वीतराग-सर्वज्ञ-परमात्मा ही निर्दोष परमात्मा हैं, वे अठारह दोषों से रहित हैं; न तो वे किसी का भला-बुरा करते हैं, न किसी से कुछ लेते-देते हैं, उनको भूख-प्यास नहीं है, उन्हें किसी के प्रति द्वेष भाव नहीं है और न ही भक्तों पर कभी राग भाव होता है। वे इस जगत के प्राणियों के सुख-दुख के ज्ञाता तो हैं; परन्तु कर्ता नहीं हैं।

वे वीतमोही, वीतरागी, वीत लोभी, वीत क्रोधी, वीत मानी, वीत क्षुधा, वीत निद्रा हैं और साथ ही लोकालोक के ज्ञाता मात्र

हैं; जानने वाले हैं, अकर्ता हैं। बच्चो! हमें ऐसे निर्दोष परमात्मा का ही स्मरण करना चाहिए, निर्दोष परमात्मा के ही दर्शन करना चाहिए, निर्दोष परमात्मा के वचन सुनना चाहिए, स्वयं भी निर्दोष होने की भावना भाना चाहिए और निर्दोष होने का प्रयास करना चाहिए।' (महिलाएँ यदि स्वयं समझी हुई हैं और श्रद्धावती हैं तो वे महारानी चेलना जैसा कार्य करके अपने परिजनों को सन्मार्ग में लगा सकती हैं।)

इस प्रकार अपने परिवार के सदस्यों को वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धावान बनाएँ। स्वर्ग-नरक एवं उनके कारण रूप पुण्य-पाप के प्रति श्रद्धावान बनाकर सत्कर्म करने के लिए प्रेरित करें। जिससे वे विवेकवान होकर न तो अंधविश्वासों में उलझेंगे और न कभी गलत आचरण द्वारा धन प्राप्त करने के लिए कार्य करेंगे।



कक्ष निर्माता, प्रतिमा विराजमानकर्ता या पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में इन्द्र-राजा बनकर लाभान्वित होने वाले इस लाभ के बदले दान राशि देकर; फिर इसी राशि के कारण मंदिर/संस्थान/ट्रस्ट/समाज के अध्यक्ष/मंत्री/नेता बनना चाहते हैं।

- 'ऐसा क्यों होता है' पुस्तक से साभार

जिन दर्शन है सुख का कारण

श्रावक की बाह्य पहचान के तीन मुख्य चिह्न कहे गए हैं – प्रतिदिन जिन दर्शन करना, रात्रि भोजन का त्याग करना एवं बिना छने पानी का त्याग करना। कहा भी है –

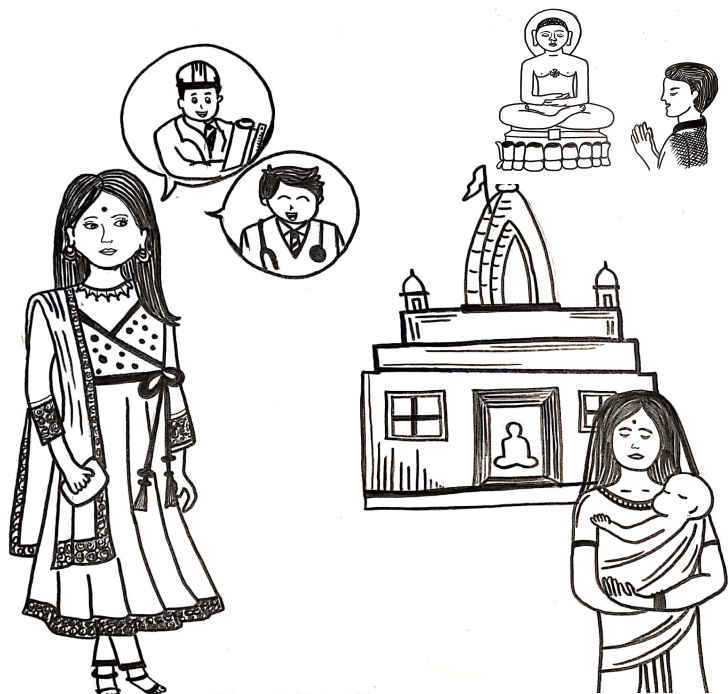
कुन्दकुन्द कह गये सभी से, जैनी वह कहलायेगा।
दिन में भोजन, छानकर पानी, नित्य जिनालय जायेगा।।

और

‘सच्चे जैनी की तीन निशानी – जिन के दर्शन, दिन में भोजन, पिये छानकर पानी’।

‘जिसने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों को जीता उन्हें जिन कहते हैं या जो वीतरागी-सर्वज्ञ और हितोपदेशी भगवान होते हैं उन्हें ही जिन कहते हैं, उनकी वाणी ही जिनवाणी है और उनके मार्ग पर चलने वाले नग्न दिगम्बर वीतरागी सन्त ही हमारे गुरु हैं।’

ये निर्दोष हैं और निर्दोष होने का मार्ग बतलाते हैं; इसलिए यही हमारे परम पूज्य हैं। देव और गुरु में ही पंचपरमेष्ठी सम्मिलित हो जाते हैं; क्योंकि अरहन्त और सिद्ध देव अर्थात् भगवान हैं



और आचार्य-उपाध्याय-साधु, गुरु हैं। ये पंच परमेश्वरी ही प्रति दिन स्मरणीय महापुरुष हैं।

लोक में ऐसा माना जाता है कि हम जिनके पास रहते हैं या सुबह-सुबह जिनका मुँह देखते हैं, दिन-भर उसी प्रकार का कार्य करने का हमारा मन होता है। दुकानदार भी अपनी पहली बोनी/ग्राहकी नहीं बिगाड़ना चाहता। अनेक लोग तो ऐसे होते हैं कि कदाचित् थोड़ा नुकसान भी हो जाए तो भी पहले ग्राहक

को वापस नहीं जाने देते; कि 'यदि बोनी बिगड़ गई तो पूरा दिन बिगड़ जाएगा।'।

इस लोकोक्ति के अनुसार हमें समझना चाहिए कि हम जिस समय सो कर उठते हैं, नहाते हैं तो एकदम तरो-ताजा होकर नए दिन में कुछ नया/अच्छा करने के लिए प्रवेश करते हैं। उस समय यदि हम भक्तिभाव/विनम्रता पूर्वक जिनेन्द्र परमात्मा अर्थात् पूर्ण निर्दोष/निरपेक्ष/निष्पक्ष, परम शान्त मुद्रा के धारक परमात्मा के मुख का दर्शन करेंगे, उनका गुणानुवाद करेंगे, उनके नजदीक होंगे, उनके वचन सुनेंगे, उनके अनुसार चलने की भावना भाएँगे तो निश्चित ही हमारा दिन ही नहीं, हमारा जीवन भी सुधरेगा ही।

इसके विपरीत यदि हम प्रातः उठते ही नहा-धोकर टेलीविजन पर हीरो-हीरोइनों के धारावाहिक, गाने, नृत्य देखते हैं, व्यापारिक/राजनीतिक चर्चाओं में उलझते हैं, अखबार में राग-द्वेष, बलात्कार, चोरी-बदमाशी के समाचार पढ़ते हैं तो सुबह से ही हमारा मन इन विषयों से भर जाता है और फिर दिन-भर हम उन्हीं विकल्पों में उलझते हैं, चर्चाएँ करते हैं, अपने भाव बिगाड़ते हैं और इस तरह भाव बिगाड़ते-बिगाड़ते, अपना भव ही बिगाड़ लेते हैं।

जिनेन्द्र परमात्मा या देव-शास्त्र-गुरु या पंच परमेष्ठी या चौबीस तीर्थंकर/भगवान (इन सबको एक ही समझना मात्र

नाम भेद है) का गुण स्मरण स्वयं निर्दोष होने की भावना अर्थात् सत्य-अहिंसा-नैतिकता-मानवता-सच्ची समझ, सम्यक् आचरण के पथ पर चलने की भावना के साथ, निरपेक्ष भाव से ही करना चाहिए।

‘जिन मन्दिर भिक्षालय नहीं, शिक्षालय हैं।’ इस बात का अपनी संतान को इतनी दृढ़ता पूर्वक श्रद्धान कराएँ कि वह कभी, किसी भी परिस्थिति में किसी से यहाँ तक कि भगवान के सामने भी कुछ भी माँगने के लिए हाथ न फैलाए। वह अपने पुण्य और पुरुषार्थ पर विश्वास रखे, कभी भी गलत मार्ग अर्थात् गलत साधन द्वारा धन-पद पाने का प्रयास न करे।

माताएँ जब अपने बच्चों में जन्म से ही डॉक्टर-इंजीनियर बनने की भावनाएँ भरती हैं तब वे बहुत अच्छे डॉक्टर और इंजीनियर बन कर समाज के सामने आते हैं। तब फिर यदि आप उन्हें जन्म से ही सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का उपासक बनाएँगी, उनको गोद में लेकर, उनकी अंगुली पकड़कर, उनके साथ चलकर दर्शन करेंगी, पूजन कराएँगी, अवकाश के दिनों में विशेष धर्म चर्चा उनके साथ करेंगी, तो निश्चित ही बच्चों के मन में देव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धा के भाव भरे हुए होंगे और वे अति विशिष्ट (अत्यधिक दूरी, बीमारी, निवास, स्थान पर मंदिर ही न होना) परिस्थितियों को छोड़कर स्वयं ही नियमित

रूप से जिन-दर्शन करेंगे। जिनके हृदय में जिनेन्द्र परमात्मा विराजमान हैं, उनके गुणों के प्रति भक्ति भरी हुई है, उन्हें उन भक्ति के भावों से विशिष्ट जाति के पुण्य का आस्रव-बंध होता है, जिससे लौकिक अनुकूलता, सम्मान, पद-प्रतिष्ठा इत्यादि सहज ही प्राप्त होते हैं। कदाचित् पूर्वकृत तीव्र पाप के उदय से ये सब प्राप्त न हों तो भी वे कभी टेंशन-डिप्रेशन में आकर घर से भागना, आत्महत्या करने जैसे कार्य नहीं करेंगे।

आप बच्चों को होमवर्क, स्कूल के समय या मन्दिर की दूरी के कारण जिन मन्दिर/जिन दर्शन से दूर न रखें। यदि दुर्भाग्य से प्रतिदिन मन्दिर जाना संभव न हो, तो घर पर ही सुबह-शाम जब संभव हो स्तुति आदि पाठ करें और अवकाश के दिनों में अवश्य ही मन्दिर जाएँ।

जिन-मन्दिर को देखना भी भव-ताप को हरण करने वाला बताया गया है, तब फिर भगवान के दर्शन करना, पूजन करना तो कितना लाभदायक और पुण्यवर्धक होगा? दर्शन पाठ में कहा है -

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।

दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है॥

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से राग आदि हीन होते हैं और वीतराग-विज्ञानता का स्वरूप समझ में आता है।

लोक में सभी अपने रागी-द्वेषी देवी-देवताओं के प्रति संतान को लोभ-लालच पैदा कराकर उनके दर्शन-पूजन तथा व्रत रखने के लिए प्रेरित करते हैं। हमें तो वीतराग निर्दोष परमात्मा और निर्दोष मार्ग प्राप्त हुआ है। यह कितना महान पुण्य का उदय है – यह समझने व स्वीकारने योग्य है।

आपसे अपेक्षा है कि आप अपनी जिम्मेदारी समझकर अपनी संतान को इस प्रथम कर्तव्य 'जिन दर्शन' का महत्त्व समझाने में अवश्य सफल होंगी।



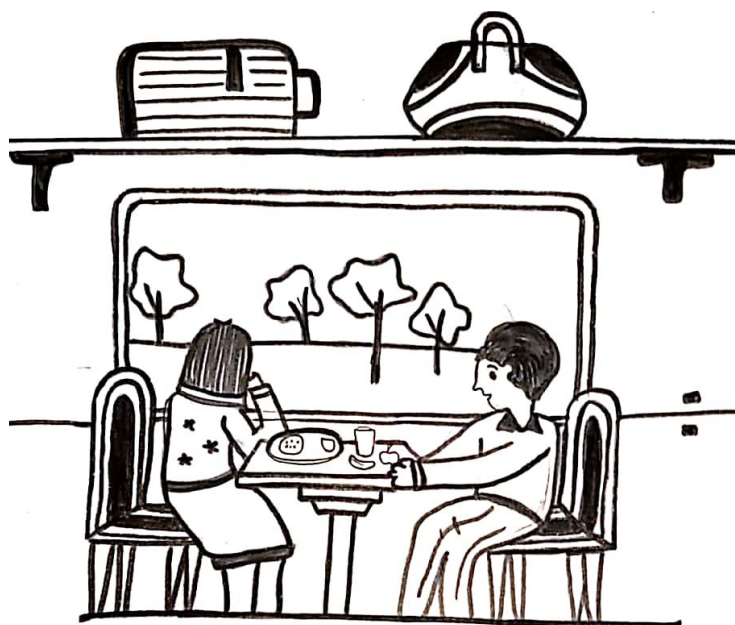
बाकी है...

धन-पद पाने बहुत पढ़ाया, बच्चों को,
निज पद पाने की शिक्षा देना, बाकी है ॥
अन्याय-अनीति सहज सीखते हैं जग में।
न्याय-नीति की सबको शिक्षा देना, बाकी है ॥
होटल-चौपाटी पर बाल-वृद्ध सब खाते हैं।
शुद्ध-सात्त्विक भोजन बनाना, बाकी है ॥
कलहकारिणी निंद्य-मृषा वच कहते सब।
हित-मित-प्रिय वाणी सिखलाना बाकी है ॥
आगे बढ़ते लोगों को, मिले लोग गिराया करते हैं।
गिरे हुए को उठा प्रेम से, गले लगाना बाकी है ॥
मंदिर-गिरि-आश्रम तो बहुत बनाये हैं हमने।
जन-जन के निर्मल उर में, जैनत्व जगाना बाकी है ॥

रात्रि-भोजन - महा पाप

पहले रेल, बस अथवा अन्य सार्वजनिक स्थल पर शाम के समय किसी को भी भोजन करने के लिए डिब्बा खोलते देखते थे तो आस-पास के लोग समझ जाते थे कि 'ये भाई साहब जैन हैं।' जो भाई-बहन नौकरी या व्यापार किया करते थे वे भी अपने काम बन्द करके, सायंकालीन भोजन कर लिया करते थे। रात्रि-भोजन अपने छोटे बच्चों को भी नहीं कराते थे; परन्तु विगत चालीस-पचास वर्षों में समाज इस संस्कार से विहीन होती दिखाई दे रही है। आज शहरों में हजार परिवारों में ऐसे पाँच-दस परिवार भी मिलना मुश्किल है, जिनके पूरे सदस्य दिन में भोजन करते हों; जबकि ऐसे परिवार बहुतायत में मिलेंगे जिनमें पूरे के पूरे सदस्य रात्रि-भोजन करते हैं। सत्तर साल के दादाजी-दादीजी भी पोते-पोतियों के साथ घर में रात्रि-भोजन करते हैं।

वाटिका में जाकर रात के आठ-नौ बजे हाथ में प्लेट लेकर समाज के सैकड़ों लोग, जिनमें अनेक सदस्य तो स्वाध्याय-सभाओं में आने वाले भी होते हैं, एक साथ भोजन करते हैं - इन दृश्यों को देखकर शर्म से मस्तक झुक जाता है।



दिन में भोजन

हम पंच परमेष्ठी को मानते हैं, चौबीस तीर्थकरों को मानते हैं, चौबीस तीर्थकरों में से किन्ही विशिष्ट तीर्थकरों को भी मानते हैं, किन्हीं आचार्यश्री को मानते हैं पर इनमें से किसी की नहीं मानते। जब कोई त्यागी-व्रती या विद्वान रात्रि-भोजन के त्याग के लिए प्रेरित करते हैं, तब 'महाराजश्री! पण्डित साहब! आज के युग में यह संभव नहीं है' – ऐसा कह कर अपनी लोलुपता/कायरता प्रदर्शित करते हैं।

जब 'जिनके जीवन में गुरु नहीं, उनका जीवन शुरू नहीं' के नारे लगाने वाले, मुनि संघों के साथ चलकर विहार क्रिया कराने वाले, आहार दान करने/कराने वाले, चातुर्मास, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराने वाले, मन्दिर व स्वाध्याय भवन के निर्माण में सहयोग करने वाले, शिविरों के उद्घाटन कर्ता, जिनवाणी-मंगल कलश विराजमान कर्ता, शिविर-विधान आयोजक के रूप में हजारों-लाखों रुपए खर्च करने वाले भी रात्रि-भोजन का त्याग नहीं कर पाते, अपने परिवार में रात्रि-भोजन के त्याग के संस्कार नहीं दे पाते - तब यह कितनी बड़ी विडम्बना लगती है। जो माताएँ-बहिनें धर्म, परिवार और समाज की नींव कही गई हैं, वे भी होटलों-पार्टियों में ही नहीं, घर पर भी बड़े आनन्द के साथ रात्रि-भोजन कर रही हैं, करा रही हैं और इस तरह भयंकर पाप का बंध कर रही हैं।

रात्रि भोजन करने में त्रस जीवों का घात होता है, जिनके घात से मांसाहार का दोष लगता है। रात्रि में भोजन बनाते, बर्तन साफ करते समय जीवों का घात होता है। रात्रि में बर्तन साफ न किए गए तो उनमें जूठन के कारण असंख्यात त्रस जीव जन्म लेते और मरते हैं, उन सब का पाप लगता है।

हो सकता है सफाई और सावधानी के कारण आपकी थाली में जीव न आए हों, जिससे आपको तत्काल होने वाली हानि न

हो; परन्तु इस पाप का फल तो आप को भोगना ही पड़ेगा; फिर भले आप कितना भी स्वच्छ भोजन करें, बाग-बगीचों में जाकर प्राणायाम करें; लेकिन उस पाप का फल बीमारियों व दुःख के रूप में मिलेगा ही। साथ ही जैनाचार की अहिंसक संस्कृति के विनाशक होने के कारण भी बहुत बड़े पाप के भागीदार बनेंगे।

हमारे दादा-दादी, माता-पिता ने जैन संस्कारों/संस्कृति को सुरक्षित रखा और हम अपने प्रमाद, स्वाद की लोलुपता, दिखावे और मनोरंजन के लिए रात्रि भोजन कर-कराकर, करने वालों की अनुमोदना करके बहुत पाप का बंध कर रहे हैं, जिसका फल हजारों वर्षों तक में भी नहीं भोगा जा सकेगा।

माताएँ-बहनें यदि परिवार को वात्सल्य पूर्वक पौष्टिक-स्वादिष्ट-आकर्षक भोजन दिन में बनाकर दिन में ही कराएँ एवं पतिदेव व बच्चों को समझाएँ कि 'अपनी संस्कृति अहिंसक और वैज्ञानिक है।

दिन में किया गया भोजन सुपाच्य होता है, रोग उत्पन्न नहीं होते हैं और जीवों की हिंसा न होने से पुण्य का बंध होता है, जिससे अन्य कारणों से भी होने वाली बीमारियाँ/दरिद्रता आदि दूर हो जाते हैं। दिन में भोजन करना स्वास्थ्य/अहिंसा/दया आदि अनेक दृष्टियों से बहुत ही लाभदायक है।'।

जिस घर में रात्रि भोजन होता है, उस घर के सदस्य कभी भी रात्रि के स्वाध्याय तथा अन्य कार्यक्रमों में नहीं पहुँच पाते; क्योंकि वह समय तो उनके भोजन का समय होता है। फिर देर से सोते हैं, देर से उठते हैं तो प्रातःकाल पूजन-अभिषेक आदि में भी सम्मिलित नहीं हो पाते, इस प्रकार वह पूरा परिवार ही जैनत्व से रहित हो जाता है। 'जहाँ जैनाचार नहीं, वह जैन परिवार नहीं।'।

माताएँ-बहनें स्वयं समझें। वे दूसरों की देखा-देखी, अपने आप को इक्कीसवीं सदी की महिला या 'यह लाइफ एंजॉय करने को मिली है' या बाजार में बहुत सुन्दर-स्वादिष्ट-आकर्षक भोजन मिलता है - ऐसा मानकर रात्रि भोजन न करें; न करायें।

यदि कदाचित् किसी परिवार में किसी की व्यापारिक/शैक्षणिक या अन्य कोई परिस्थितियाँ हैं, जिनमें दिन में भोजन करना संभव ही न हो, तब भी घर पर ही समय की मर्यादा का नियम लेकर भोजन करें; परन्तु सार्वजनिक स्थल पर तो रात्रि भोजन का त्याग अवश्य करें; ऐसा करने से रात्रि-भोजन के प्रति उपेक्षा भाव अन्दर चलेगा तो जब दिन में ही भोजन करने का अवसर मिलेगा तब दिन में ही भोजन करेंगे एवं समय आने पर पूरी तरह से भी छूट सकेगा।

जबकि सार्वजनिक/सामूहिक रूप से रात्रि भोजन करना तो इस बात का सूचक हो जाता है कि आप रात्रि भोजन कराने की पक्षधर हैं, आप रात्रि भोजन को गलत नहीं मानती हैं, आप पूरी समाज को अनुमति/सहमति दे रही हैं कि रात्रि भोजन किया जा सकता है।

आपको देख कर जिन्होंने रात्रि भोजन का त्याग किया है वे पिछड़े हैं, आप शिक्षित हैं, समझदार हैं – ऐसी खोटी मान्यताएँ लोग ग्रहण कर लेते हैं, इसका पाप भी आपको लगेगा।

आपके हाथ में अभी बहुत कुछ है – ऐसा न हो जाए कि आपके हाथ में भी कुछ न रह जाए; तब पछताने के अलावा कुछ नहीं होगा।



ज्ञाता बन यह भाव जगाऊँ॥

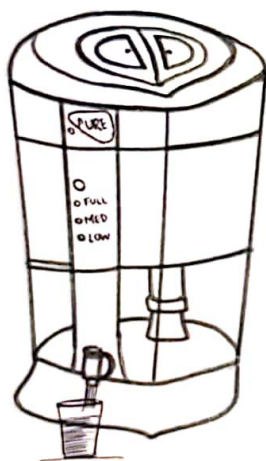
मन करता है कुछ कर जाऊँ, रेतों को मैं दिल से हँसाऊँ।
 मोहितिमिर फैला है चहुँ दिशि, ज्ञान ज्योति से उसे भगाऊँ॥
 पुण्य उदय से प्राप्त हुआ धन, इच्छुक जन के बीच लुटाऊँ।
 गुरुप्रसाद से ज्ञान मिला जो, घर-घर जाकर उसे पढ़ाऊँ॥
 मोह नींद में सोये हैं जो, वात्सल्य से उन्हें जगाऊँ।
 कर्तापन का भाव रहे ना, ज्ञाता बन यह भाव जगाऊँ॥

पिओ छानकर पानी

आज से लगभग चालीस-पचास वर्ष पूर्व तक कोई भी साधर्मी भाई-बहन धार्मिक-पारिवारिक-व्यापारिक यात्रा पर बाहर जाता था तो अपने साथ लोटा और छत्रा अवश्य लेकर जाता था। रेलवे स्टेशन पर ऐसे अनेक लोग दिख सकते थे जो नल से अपने लोटे में जल भरने से पहले लोटे पर छत्रा लगाते थे और वहीं छने पानी से जीवाणी डाल कर अपने अहिंसा धर्म का पालन करते थे।

जिस तरह किसी कपड़े, गाड़ी या किसी वस्तु पर तिरंगे झंडे का निशान बना हो तो लोग समझ जाते हैं कि 'यह भारतीय है' उसी प्रकार व्यक्ति के हाथ में छत्रा देखकर लोग समझ जाया करते थे कि 'यह जैन है'।

पहले चाहे कुएँ से जल ला रहे हों या हैंडपंप से या नल से जल आ रहा हो; लेकिन किसी भी घर में बिना छना पानी; कम से कम खाने-पीने के रूप में तो काम में नहीं लिया जाता था; क्योंकि सभी को जिनवाणी पर विश्वास था कि बिना छने पानी की एक बूँद में असंख्य जीव जिनेन्द्र परमात्मा ने कहे हैं, (विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि एक बूँद पानी में 36450



चलते-फिरते जीव देखे गए हैं।) उनकी सुरक्षा के लिए जो कुछ बन सकता है उतना हमें अवश्य करना चाहिए और इसीलिए सभी छने पानी का उपयोग किया करते थे।

आज सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि बिना छने पानी में अनेक प्रकार के कीटाणु/रोगाणु/जीवाणु हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल हैं इसलिए पानी छानकर काम में लेना चाहिए, जिससे कि वे जीवाणु/रोगाणु नष्ट हो जाएँ। इसके लिए लोग बड़ी-बड़ी फिल्टर मशीनें घर पर ले आए हैं और उन मशीनों से छने (?) हुए जल का उपयोग करते हुए बड़ी शान के साथ कहते हैं कि 'हम अत्यन्त शुद्ध जल का ही उपयोग करते हैं।'

बहनो! 'दया भाव के साथ यत्नाचार पूर्वक जो जल स्वच्छ किया जाता है, वह जल शुद्ध है' परन्तु जहाँ पर दया का भाव नहीं है केवल 'अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए आर.ओ.मशीन आदि किसी विधि से जीवाणु तथा कुपोषक तत्व नष्ट हो जाएँ और हमें ऐसे जल की प्राप्ति हो जाए जो स्वादिष्ट व शरीर का पोषक हो' - ऐसी भावना हो, वह जल स्वच्छ हो सकता है; परन्तु शुद्ध नहीं। ध्यान रखें 'दया ही धर्म का मूल है।'

जिनवाणी में जल को स्वच्छ और शुद्ध रखने की जो विधि बताई गई है कि दोहरे, मोटे, सफेद और साफ कपड़े से पानी को धीरे-धीरे छानकर, फिर छने हुए पानी से बहते हुए जल में जीवाणी डालकर, यदि पानी में हानिकारक मिनरल्स हों तो छने पानी को उबालकर प्रयोग किया जाए तो वह जल स्वच्छ भी है और शुद्ध भी है; क्योंकि जिनवाणी में स्वच्छता के साथ ही भावों की निर्मलता को अर्थात् दया भाव को जोड़ा गया है, जिससे वह पानी शुद्ध हो जाता है।

इस तथाकथित वैज्ञानिक/आधुनिक/भौतिक/चकाचौंध भरे जीवन की विडम्बना यह है कि जैन साहब के घर जिनवाणी के अनुसार पचास हजार रुपए की आर.ओ. मशीन तो है लेकिन जिनवाणी के अनुसार पचास रुपए का आधा मीटर योग्य छत्रा

नहीं है। यदि है भी तो प्लास्टिक की छत्री या किसी कोने में टंगा हुआ दुबला-पतला सा एक कपड़ा, जो साधर्मियों के आने पर दिखाया जा सके कि 'हमारे घर छत्रा है।'

यदि हमारी माताओं-बहनों का पवित्र श्रावकाचार की संस्कृति के प्रति विवेक पूर्वक रुझान हो, यदि उनके मन में भावनाएँ हों, यदि वे पानी के छत्रे की कीमत व सुरक्षा तिरंगे झंडे की तरह करने लगे, तो हम अपने इस तीसरे नियम का पालन अच्छी तरह कर सकते हैं। जिस प्रकार -

तिरंगे झंडे का सुनिश्चित आकार हुआ करता है, तिरंगे झंडे को मैला नहीं रखा जा सकता है, तिरंगे झंडे को जमीन पर नहीं रखा जा सकता है, तिरंगा झंडा फटा हुआ नहीं हो सकता उसी प्रकार जैन परिवारों की आन-बान-शान का प्रतीक यह छत्रा भी योग्य अनुपात (जिस बर्तन में पानी छानना है उसके मुँह से कम से कम तीन गुना बड़ा होना चाहिए।)

मोटे-दोहरे कपड़े से ही पानी छाना जाना चाहिए, वह कपड़ा साफ स्वच्छ सफेद होना चाहिए।

पानी छानने के बाद छत्रे हुए पानी को लोटा या जग में लेकर कपड़े की जिस ओर से पानी छाना गया है उस ओर लोटे से पूरे छत्रे पर वॉशवेसन में डालना चाहिए, जिससे कि उसमें जो सूक्ष्म जीव आ गए हों वे बहते हुए पानी में सम्मिलित हो जाएँ।

(यह हमारी मजबूरी है कि हम जहाँ से जल आता है वहीं जीवाणी नहीं डाल सकते; लेकिन इतना काम तो सभी कर ही सकते हैं।)

यह भी ध्यान रखने योग्य है कि छना हुआ पानी 48 मिनट बाद पुनः अनछना हो जाता है अतः समय की मर्यादा के बाद पानी फिर से छानकर ही काम में लेना चाहिए। पानी उबाल लेने पर 24 घंटे तक काम में लिया जा सकता है।

बहनो! यदि आप जिनवाणी का आदर व विश्वास करती हैं, तो कृपया सूती/सफेद मोटे कपड़े से पानी छानकर ही काम में लें अर्थात् आप अपनी जिम्मेदारी निभाएँ तथा परिवार को सिखाएँ। सच में तो आर.ओ. और बोतल बन्द पानी श्रावक के पीने योग्य ही नहीं है, फिर भी यदि किसी का मन न मानता हो तो उस पानी को भी छानकर ही उपयोग करें।

बहनो! कृपया ऐसा न सोचें कि 'पतले कपड़े से पानी जल्दी छन जाता है।' मोटे कपड़े से छानने पर दिन-भर में दो मिनट ज्यादा लग जाएँगे; परन्तु आप अनन्त जीवों की रक्षा के भाव से ना जाने कितना पुण्य कमाएँगी। उस पुण्य का फल जब आपके जीवन में आएगा तो लोग देखकर सोचेंगे कि -

‘वाह! क्या व्यक्ति है? इतना पुण्य का उदय इस जीव के कैसे आया? इतना यश इसको क्यों मिल रहा है? इतने लोग

इसे पसन्द क्यों कर रहे हैं? दयाभाव से यत्नाचार पूर्वक किये गये इस कार्य से आपको लोग पसन्द करेंगे, आपकी सुरक्षा करेंगे, आपके चारों तरफ रहेंगे, आपका सम्मान करेंगे; क्योंकि आपने जीवों की रक्षा करके उन पर करुणा की है, आपने पानी में रहने वाले अत्यन्त सूक्ष्म जीवों को भी जीव के रूप में स्वीकार किया है, आपने उनको सम्मान दिया है।'

बोटल बन्द पानी की संस्कृति हमें और हमारी पीढ़ी को न जाने किन बोटलों की ओर बढ़ा रही है? अतः विचार कर सावधान होने योग्य तो है ही साथ ही यह हमारे उदारता को भी संकुचित करती जा रही है। पहले जब हम यात्रा में अपने साथ पानी लेकर जाया करते थे या पानी छानकर भरा करते थे, उस समय यदि कोई पीने या हाथ धोने के लिए हम से पानी माँग लेता था तो हम सहर्ष दे दिया करते थे; लेकिन आज जब हम 15-20 रुपये की बोटल लेकर बैठते हैं तब ऐसा लगता है कि कोई हमारी बोटल को बुरी नजर न लगा दे, तो हम उस पर मानो काला धागा बाँधकर सदैव बैठे रहते हैं। इतनी संकुचित मानसिकता हमें किस ओर ले जाएगी?

इसलिए 'घर पर पानी छानकर पीना/पिलाना, योग्य विधि से पानी छानकर ही भोजन बनाना माताओं-बहनों की ही जिम्मेदारी है।'

अपने बेटे-बेटियों को जो कि बाहर पढ़ने जाने वाले हैं उनको अपने साथ छत्रा रखने और पानी छानने की विधि बताने की जिम्मेदारी भी माताओं-बहनों की ही है। यदि आप इस जिम्मेदारी से बचेंगी तो आप विश्वास करें या न करें आप अनन्त जीवों की हिंसा में सहभागी बनेंगी, आप श्रावकाचार की संस्कृति के ह्रास होने में कारण बनेंगी। इस पाप के फल में आपको न जाने कितने भव यश, गुण, सुख-शान्ति से रहित होकर तिर्यच (पशु) गति में पानी में जीव बनकर बिताने पड़ेंगे, जिसकी यदि आपको कल्पना भी हो जाएगी तो आप काँपने लग जाएँगी।

पानी छानकर पीने के नियम का एक महत्वपूर्ण लाभ यह भी है कि जिन माताओं ने अपने बेटे-बेटियों को घर में रहते हुए ही पानी छानकर काम में लेने की विधि बताई है और छाने पानी के उपयोग का संकल्प दिलाया है, उनकी संतान होटलों में जाकर अभक्ष्य पदार्थ खाने एवं शराब आदि पीने जैसे बड़े दोषों से सदा ही सुरक्षित रहेगी, जिससे हमारा परिवार और समाज सदैव ससम्मान/प्रसन्न रहेगा।

बहनो! यह काम बड़ा नहीं है, बहुत छोटा सा काम है; केवल आपके हृदय में दया का भाव, जिनवाणी के प्रति विश्वास और जैनत्व का गौरव जगाने की बात है।

जब आपको डॉक्टर की बात पर विश्वास हुआ कि कोरोना वायरस इतना सूक्ष्म है कि रगड़-रगड़ कर हाथ धोने पर भी हमारे हाथ की रेखाओं में रह सकता है और वहाँ से नाक के माध्यम से अन्दर जा सकता है; तब आपने केवल पानी से हाथ नहीं धोए, बल्कि साबुन और सैनिटाइजर से हाथ धोना चालू कर दिया। डॉक्टर के कहने पर तरह-तरह के मास्क लेकर आयीं और अपनी सुरक्षा करने लगीं; पर आपको जिनवाणी माँ पर, जिनेन्द्र भगवान पर विश्वास नहीं है, वे कहते हैं कि इस पानी में इतने सूक्ष्म जीव रहते हैं जो छत्रे के द्वारा ही छाने जा सकते हैं। अरे! वह छत्रा भी उन जीवों की ही नहीं, अपनी सुरक्षा के लिए भी एक मास्क ही समझ लीजिए। आप मुँह पर मास्क लगा सकती हैं; लेकिन अपनी और अनंत सूक्ष्म जीवों की सुरक्षा के लिए भगौनी/बाल्टी/जग आदि के ऊपर यह मास्क/छत्रा नहीं लगा सकतीं? विचारियेगा।



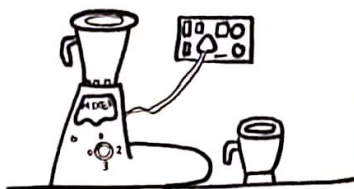
हम आर्थिक/राजनीतिक/व्यावसायिक मुद्दों पर घंटों बहस करते हैं, अपनी राय देते हैं; परन्तु जब सामाजिक/धार्मिक शिथिलाचार के संबंध में विचार किया जाता है, तब मौन रह जाते हैं।

- 'ऐसा क्यों होता है'

रसोईघर को रस पूरित बनाएँ

आज की भागम-भाग एवं दिखावे की जिंदगी ने आबाल-वृद्ध सभी को रसोईघर की शुद्ध, वात्सल्य पूरित, रसयुक्त भोजन सामग्री से दूर कर दिया है। लगभग सभी घरों की 'रसोई' में बाजार में बने हुए बड़ी-पापड़, नमकीन, मिठाइयाँ ही नहीं, बाजार में पिसा हुआ आटा, बेसन और मसाले 'सुन्दर पैकिंग' में, बहनों के सुन्दर हाथों से रसोई घर की काल्पनिक सुन्दरता बढ़ा रहे हैं। इसे आधुनिक लोग भले ही 'रस-भरी-रसोई' कहें; परन्तु श्रावकाचार के अनुसार वह रसोई अर्थात् भोजनालय अभक्ष्य पदार्थों का भंडार है।

बाजार में जो भी खाद्य सामग्री तैयार की जाती है वह देखे-शोधे बिना तथा समय की मर्यादा बिना, केवल कैसे जल्दी और अधिक कमाऊ सामग्री तैयार की जा सके इस दृष्टिकोण से ही तैयार की जाती है; विडम्बना यह है कि इस बात को जानते सभी हैं; पर मानते नहीं हैं। कारखानों में जो खाद्य सामग्री तैयार करने वाले मजदूर हैं उनके वस्त्र, हाथ-पैर आदि की सफाई के सम्बंध में भी अनेक वीडियो आते रहते हैं, जिन्हें देखकर किसी भी समझदार को उन पदार्थों के प्रति ग्लानि हो सकती है।



अनेक निर्माताओं द्वारा यह प्रदर्शित किया जाता है कि यह खाद्य सामग्री मशीनों से बनाई गई है, किसी का हाथ भी नहीं लगा है – ऐसा हो भी सकता है; परन्तु क्या इतनी मात्रा में शोध-बीनकर सामग्री तैयार कराई जा सकती है ? क्या सामग्री बनाते समय पानी छानकर काम में लिया जा सकता है ? सूर्योदय और सूर्यास्त का ध्यान रखते हुए सामग्री तैयार की जा सकती है ? बनी हुई सामग्री को सुरक्षित रखने में अहिंसा और दया का पालन किया जा सकता है ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर एक ही होगा कि – नहीं; कभी नहीं।

कितनी बार समाचार-पत्रों और टेलीविजन के माध्यम से समाचार आते हैं कि मसाले, आटे, घी-तेल में कितने प्रकार की

मिलावट की जाती है; मिलावट की हुई सामग्री क्या शुद्ध होगी ? जहाँ टनों आटा-बेसन एक साथ पीसा जा रहा हो क्या वहाँ गेहूँ अथवा चना देख शोधकर, बिना घुना/वींधा हुआ पीसा जा सकता होगा ? वह आटा महिनों तक नहीं रखा रहता होगा ? जबकि हमारे आगम में इनकी मर्यादा वर्षाकाल में 3 दिन, गर्मी में 5 दिन और सर्दी में 7 दिन की ही है। अतः सच में सब सामग्री हमें घर पर ही तैयार करना चाहिए।

बहनो ! आपको लगता होगा कि यह सब काम घर पर किया जाना संभव नहीं है । आपकी यह सोच बिल्कुल गलत है । यदि आप करना चाहें तो ये सभी कार्य घर पर बहुत अच्छी तरह किए जा सकते हैं । पहले आपकी माँ और दादी सभी कार्य घर पर ही करती थीं ।

आप कह सकती हैं माँ या दादी के पास समय बहुत था, उन्हें तो एक यही काम था; हमें और भी बहुत से काम हैं ।

यदि आपकी यह बात मान भी ली जाए तो उन्होंने एक यही काम करके ही स्वयं और अपने परिवार को कितने जीवों की हिंसा के पाप से बचाया है, स्वास्थ्य का संरक्षण किया है, साथ ही पैसा भी बचाया है । आप कह सकती हैं कि उनके पास अधिक पैसा कहाँ था ?

हाँ ! उनके पास अधिक पैसा नहीं था, उनकी आय कम थी

तो व्यय भी कम था। आपने आय बढ़ाई और साथ में व्यय बढ़ा लिया। आप पति-पत्नी धन कमा कर ला रहे हैं और बाजारों में खर्च कर रहे हैं। आप दूसरों की नौकरी करके, फिर दूसरों को नौकर रख कर खर्च कर रहे हैं और इसे अपनी शान समझ रहे हैं। बच्चों और अपने सास-ससुर को नौकरों के भरोसे छोड़ रहे हैं। यह कैसी उन्नति है? यह कैसी सफलता है? यह कैसी आय है? जो अपनों से और अपने धर्म से दूर करती जा रही है? जो हमें अभक्ष्य सेवन की ओर अग्रसर कर रही है? इन सबका फल जब प्राप्त होगा तब हम रोएंगे और सुनने-देखने वाला कोई नहीं होगा।

बहनो! आपके पास आपकी दादी से अधिक साधन हैं और समय भी है ही; परन्तु व्हाट्सएप-फेसबुक-टेलीविजन देखने, घर के बाहर घूमने, ब्यूटी पार्लर जाने, फोन पर फालतू की बातें करने में समय जा रहा है। यदि आप प्रमाद छोड़कर श्रावकाचार के अनुसार पालन करना चाहें तो ये सब कार्य बिल्कुल भी कठिन नहीं हैं।

हर रसोई घर में मिक्सर है उससे आप दो मिनट में समय की मर्यादा वाला मसाला पीस सकती हैं। आप छोटी आटा चक्की घर में रखकर आधा घंटे में आटा पीस सकती हैं।

कदाचित् व्यस्ततावश आपके पास समय की बहुत ही कमी

हो और मर्यादाओं का ध्यान पूरा न रख पा रही हों तो भी जितना अधिकतम हो सकता है वह तो किया ही जा सकता है। प्रति रविवार आप केवल आधा घंटे का समय देंगी तो उतने में ही आप घर के मसाले व आटा तैयार कर सकेंगी।

अगर आप एक घंटा और देंगी तो आप घर में ही तरह-तरह के शुद्ध नमकीन-मिठाई भी हर सप्ताह बना सकेंगी।

यह कार्य इतना सरल होते हुए भी कितना दुर्भाग्य है कि बाजार/होटल जाने के लिए आप एक-डेढ़ घंटा सजने-संवरने में लगा सकती हैं, होटलों-चौपाटी पर जाकर भोजन कर सकती हैं और वहाँ घंटों बिताकर वहाँ से पैक किया हुआ सामान लेकर आ सकती हैं; पर घर पर इतना सा समय नहीं दे सकती है?

पुण्यवर्धक श्रावकाचार के पालन से स्वास्थ्य और धन की सुरक्षा भी आपके ही हाथों में है। बहनो! आलस्य छोड़कर अपने गौरवशाली श्रावकाचार को ससम्मान अपने मस्तक पर धारण कीजिए। आप अपने घर को एक गृहस्थ का नहीं श्रावक का घर बनाइए, अपने रसोईघर को अपने हाथ से बनाए हुए व्यंजनों से सुगंधित कीजिए और अपनी रसोई को 'चौका' बनाइये -

शुद्ध भोजन को 'चौका' कहते हैं। शुद्ध भोजन वास्तव में वही है जिसमें निम्नलिखित चार गुण हों -

1. जो न्यायपूर्वक कमाया गया हो, 2. यत्नाचारपूर्वक बनाया गया हो, 3. वात्सल्यपूर्वक खिलाया गया हो, 4. अनासक्तिपूर्वक खाया गया हो।

आशा है हम सभी इस चतुर्मुखी भोजनशुद्धि पर ध्यान देंगे।

शुद्ध, स्वच्छ, सात्त्विक भोजन वात्सल्य पूर्वक परिवार के साथ बैठकर कीजिए; आपके जीवन में आनन्द-रस बरसेगा। विचार कीजियेगा।



आत्मारथी परिवार कैसा हो ?

देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धालु, स्वाध्याय से भी हो प्रेम।
वद्धजनों की सेवा-आदर, करना जिनका होवे नेम॥
प्रातःकाल मिलें जब परिजन, जय जिनेन्द्र ही वे बोलें।
भजन, गीत, संगीत चलाकर, भक्ति रस को जो घोलें॥
परिजनों से साधर्मीवत्, वात्सल्य का हो व्यवहार।
करें प्रशंसा इक दूजे की, सबसे मृदुमय हो व्यवहार॥
न्याय-नीति से पति कमाकर, जब भी निज घर में आवे।
शुद्ध-सात्त्विक भोजन पत्नी, वात्सल्य युत करवावे॥
अन्याय-अनीति अरु अभक्ष्य के, साथ तजें जो तीन मकार।
हो सहयोग सरलता सम संतोष समन्वय पंच सकार॥
जुबां और जीवन सुधर्ममय, ऐसा आत्मारथी परिवार।
आत्मारथी तो रहे चैन से, सुख-शान्ति से पावे परिवार॥

मासिक धर्म के समय ध्यान रखने योग्य

श्रावकाचार का एक महत्त्वपूर्ण अंग महिलाओं द्वारा रजस्वला/मासिक धर्म के समय शुद्धि का पालन करना भी है। गृहस्थ जीवन में स्त्री और पुरुष परिवार में साथ ही रहते हैं। सभी की अपनी-अपनी स्वाभाविक शारीरिक संरचनाएँ हैं। कोई भी संरचना निंदनीय या प्रशंसनीय नहीं है, निन्दा-प्रशंसा तो भावों की होती है। हम अपने राग भाव के कारण किसी को भला या बुरा समझकर तदनुसार हर्ष-विषाद भी करेंगे तो भविष्य के लिए भी पुण्य-पाप का बंध होगा।

शरीर विज्ञान की दृष्टि से स्त्री के शरीर में एक निश्चित समय के बाद रजस्वला होने (ऋतुमति/रक्तस्राव) अर्थात् मासिक धर्म प्रारम्भ होने का नियम है, जिससे सभी परिचित हैं। इस प्रक्रिया को 'मासिक धर्म' शब्द से संबोधित किया जाना ही यह सूचित करता है कि यह बालिकाओं/महिलाओं के शरीर में प्रतिमास होने वाली सहज-स्वाभाविक प्रक्रिया है।

इस प्रक्रिया में दोषपूर्ण रक्त का स्राव होता है, जिसके कारण उस महिला के मनोभावों में सहज ही चिड़चिड़ापन, थकान आदि मानसिक परिवर्तन तथा शारीरिक दृष्टिकोण से भी कष्ट



एवं रक्तस्राव के कारण अशुद्धि सहज ही होती है। आगम कहता है कि इन परिस्थितियों में महिलाओं को चार दिन तक रसोई – मन्दिर स्वाध्याय आदि के कार्यों से दूर रहना चाहिए; क्योंकि इस समय जो रक्तस्राव हो रहा है, उसके कारण अशुद्धि रहती है, अनेक रोगाणु/कीटाणु/जीवाणुओं का प्रकोप होता है, जिनका प्रभाव खाद्य सामग्रियों तथा अन्य अनेक प्रकार से भी देखा गया है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, जिसे हमें स्वीकार करना चाहिए। साथ ही इस समय शारीरिक रूप से भी थकान/तकलीफ एवं अन्य प्रकार की विकृतियाँ होती हैं, जिनके कारण यदि महिला कठोर परिश्रम से दूर रहे तो उसे स्वास्थ्य-लाभ होगा।

भोगवादी संस्कृति के गुलाम होते जा रहे युवा वर्ग द्वारा इस आवश्यक परम्परा का निर्वहन नहीं किया जा रहा है। इसे

पिछड़ेपन का प्रतीक/अवैज्ञानिक और महिलाओं पर मानो अत्याचार किया जा रहा है – ऐसा मान कर मासिक धर्म संबंधी नियमों के पालन से युवतियाँ भी दूर होती चली जा रही हैं। बड़ी विडम्बना तो तब लगने लगती है, जब स्वाध्यायी परिवार अथवा जो जिनवाणी के उपदेशक परिवार हैं, उनमें भी ऐसे कार्यों में शिथिलाचार दिखाई देता है, तब लगने लगता है कि जब दीपक ही अंधकार फैला रहा हो, तब प्रकाश से किस की अपेक्षा की जा सकती है ?

मासिक धर्म की शुद्धि-अशुद्धि का पालन करना श्रावकाचार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है; क्योंकि इस अशुद्धता के वातावरण से हमारा परिवार ही प्रभावित होता है, अशुद्धि के काल में जिनवाणी का छूना, मन्दिर हेतु पहनने वाले वस्त्रों का छू जाना, स्वाध्याय भवन में जाने वाले व्यक्ति का छू जाना – यह बहुत दोषपूर्ण है और रजस्वला स्त्री से भोजन का निर्माण करना-कराना तो सम्पूर्ण भोजनशाला को ही अशुद्ध करना है; जहाँ फिर कभी किसी भी त्यागी-व्रती का भोजन संभव नहीं हो सकेगा। कदाचित्-किंचित् धार्मिक रुचि है तो ऐसी अशुद्धता में ही जिनवाणी का स्पर्श करना, मन्दिर जाना या अशुद्ध वस्त्र पहनकर चार दिन बाद मन्दिर जाना आदि कार्य भी होने लगते हैं जिससे पाप का भागीदारी बनना पड़ता है।

इसलिए सभी माताओं-बहनों को चाहिए कि वे नियमों का स्वयं पालन करें एवं अपनी बेटियों को भी योग्य समय पर इस बात की शिक्षा दें। ध्यान रखें इन दिनों में महिलाओं का सबसे दूर रहना निंदनीय नहीं है, यह महिला वर्ग की उपेक्षा नहीं है, यह उनकी शारीरिक-मानसिक परिस्थिति एवं उस समय होने वाली अशुद्धता को देखते हुए की गई व्यवस्थाएँ हैं; जिन्हें हमें सहजता से स्वीकार करना चाहिए -

1. कम से कम तीन दिन तक जिनवाणी का पठन/श्रवण आदि कार्य नहीं करना चाहिए। इन दिनों सामाजिक/पारिवारिक उन्नति व आध्यात्मिक विषयों का चिन्तन/विचार किया जा सकता है। नैतिक-शिक्षाप्रद व अन्य उपयोगी साहित्य का अध्ययन किया जा सकता है।

2. तीन दिन बाद जिनवाणी सुन सकते हैं; परन्तु जिनवाणी का स्पर्श नहीं करना चाहिए। मन्दिर नहीं जाना चाहिए, मन्दिर एवं स्वाध्याय भवन की किसी सामग्री का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

3. चार दिन बाद शुद्धि होने अथवा अन्य कोई विशेष शारीरिक परिस्थिति हो तो पूर्ण शुद्धि होने के बाद ही मन्दिर जाना चाहिए एवं तत् संबंधी कार्य करना चाहिए।

4. घर में रहते हुए भी उस समय काम आने वाले अपने

कपड़ों के अलावा, अन्य किसी के कपड़े, बिस्तर, भोजन सामग्री इत्यादि का स्पर्श तीन दिन तक नहीं करना चाहिए।

आज के युग में लड़के-लड़कियाँ अपना घर छोड़कर बाहर पढ़ने चले जाते हैं, जहाँ हॉस्टल के भोजनालय में भोजन करते हैं जिससे उन्हें भोजन बनाने की विधि ही नहीं आती है। जब विवाह हो जाता है तब नव दंपति बाहर नौकरी करने चला जाता है। यदि लड़कों को भोजन बनाना नहीं आता है तो अशुद्धि के दिनों में भी महिला को ही मजबूरन भोजन बनाना पड़ता है और फिर इस तरह धीरे-धीरे आधुनिकता और उन्नत सोच के प्रदर्शन के रूप में इस मासिक धर्म संबंधी श्रावकाचार की पद्धति को दरकिनार कर दिया जाता है, फलस्वरूप अनेक बीमारियों की उत्पत्ति होती है एवं घर में अशुद्धि का साम्राज्य छा जाता है। अतः माता-बहनों को चाहिए कि वे अपने बेटों को भी इस विषय की पूरी जानकारी दें एवं यथासंभव/यथाशक्ति उन्हें भोजन बनाना भी सिखाएँ, जिससे वे इन तीन दिनों में अपने एवं परिवार के योग्य भोजन बना सकें।

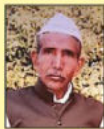
इस प्रक्रिया को स्वाभाविक प्रक्रिया एवं श्रावकाचार का मुख्य अंग मानते हुए पालन करना/कराना महिलाओं द्वारा ही संभव है।



सास-ससुर को सीख

मित्र-पुत्र के विवाह में जाने का अवसर आया।
 खुशियाँ छाई थीं परिजन में, वधु संग बहु दहेज लाया।।
 मित्र दंपति को दे बधाई, हँस कर दीनी मैंने सीख।
 सीख मित्र मानोगे यदि तो नहीं निकलेगी मुँह से चीख।।
 मित्र तिया मुस्क्या कर बोली, क्यों निकलेगी मुँह से चीख।
 सास बनी हूँ राज करूँगी, फिर भी दे दो क्या है सीख।।
 मैं बोला भाभीजी सुन लो, राज करूँगी छोड़ो आस।
 राज करने की सोचोगी तो, बनना पड़ सकता है दास।।
 सुनकर दंपति हुए अचंभित, बोले क्या कहते हो भाई।
 बड़ी आशा और मनोकामना से घर में बहू है आई।।
 मैं बोला अब सुनो ध्यान से, बहु भी बेटी होती है।
 पढ़ लिख वह काम पर जाती, कभी देर तक सोती है।।
 पुत्र ने नव परिधान चुने हैं, बहू भी तब क्यों पीछे हो।
 समय गया वह जब बहूरानी, गर्दन तक घूँघट खींचें हो।।
 बहू की भी इच्छाये होतीं, वह भी जड़ नहीं चेतन है।
 बेटी वत यदि प्यार करोगी, तो वह सुख निकेतन है।।
 पितुग्रह वह तजकर के आई, छोड़ा परिजन का सब प्यार।
 अतः पुत्रीवत् उसे समझना, दिल से करना उसे दुलार।।
 लाड़ प्यार से रखना उसको, धर्म मार्ग भी बतलाना।
 पढ़ लिखकर ही अभी आई है, गृह कारज भी सिखलाना।।

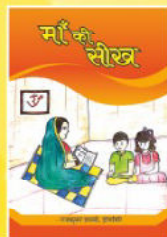
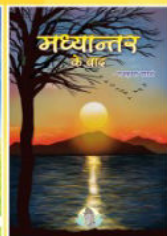
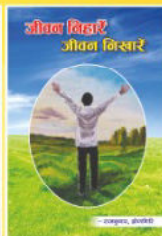
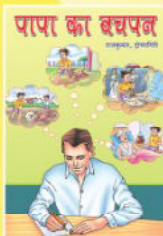
श्रीराम - नन्दिनी ग्रंथमाला



स्व. श्री रामलाल जैन, द्रोणगिरि



श्रीमती नन्दिनीबाई जैन, द्रोणगिरि



अप्रकाशित साहित्य



